[2011] 8 एस.सी.आर. 445

एं.सी. मुथैया

बनाम

बोर्ड ऑफ कंट्रोल फॉर क्रिकेट इन इंडिया एवं एक अन्य

(वर्ष 2011 की दीवानी अपील सं. 3753)

28 अप्रैल 2011

[जे.एम. पंचाल तथा ज्ञान सुधा मिश्रा, न्यायमूर्तिगण]*

बी.सी.सी.आई. का ज्ञापन तथा नियम एवं विनियम, 2008: *खंड 1(एन), 6.2.4 – अपीलकर्ता जो बी.सी.सी.आई. का भूतपूर्व अध्यक्ष है द्वारा बी.सी.सी.आई. अध्यक्ष के समक्ष द्वितीय उत्तरदाता के विरुद्ध शिकायतें दायर की गईं जिसमें अभिकथन किया गया कि द्वितीय उत्तरदाता बी.सी.सी.आई. का पदाधिकारी होने के साथ-साथ इंडिया सीमेंट्स लिमिटेड का अध्यक्ष तथा प्रबंध निदेशक होने के कारण इंडियन प्रीमियर लीग (आई.पी.एल.) के स्वामित्व के लिए आयोजित नीलामी में भाग लेने के लिए अयोग्य था जिसमें उसे सफल बोलीकर्ता घोषित किया गया तथा इस प्रकार वह चेन्नई सुपर किंग का स्वामी हो गया – शिकायत पर कोई प्रतिक्रिया नहीं – अपीलकर्ता द्वारा वाद दायर किया गया – उक्त वाद दायर करने के कुछ दिनों पश्चात् बी.सी.सी.आई. ने दिनांक 27.9.2008 को खंड 6.2.4 में संशोधन प्रवेश किया अपवाद सृजित करके – संशोधन के पश्चात् उक्त खंड इस प्रकार पढ़ा गया "कोई प्रशासक बी.सी.सी.आई. के किसी आयोजन में आई.पी.एल., चैंपियंस लीग तथा ट्वेंटी 20 को अपवर्जित करके प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किसी व्यावसायिक रुचि नहीं रखेगा।" – खंड 6.2.4 में संशोधन को अपीलकर्ता द्वारा द्वितीय वाद दायर करके चुनौती दी गई जिसमें अपीलकर्ता ने दो आवेदन भी दायर किए जिसमें बी.सी.सी.आई. को द्वितीय उत्तरदाता को सामान्य निकाय बैठक में भाग लेने की अनुमति देने से अस्थायी निषेधाज्ञा तथा संशोधन के*

* मतभेद होने के कारण मामला बड़े पीठ को निर्देशित किया गया है तथा माननीय श्रीमती न्यायमूर्ति ज्ञान सुधा मिश्रा का असहमति मत यहां प्रतिवेदित है।

विरुद्ध निषेधाज्ञा की प्रार्थना की गई तथा उसे निलंबन में डालने की अभिवचन करके – उच्च न्यायालय ने आवेदनों को यह आधार पर खारिज कर दिया कि अपीलकर्ता को विनियमों पर प्रश्न उठाने का स्थान नहीं है तथा न्यायालय भी समाज के आंतरिक प्रबंधन में हस्तक्षेप नहीं कर सकता – अपील पर अभिनिर्धारित: ***ज्ञान सुधा मिश्रा****, न्यायमूर्ति के अनुसार – बी.सी.सी.आई. का भूतपूर्व अध्यक्ष भी प्रशासक है तथा ज्ञापन में संशोधन को चुनौती देने वाले वाद दायर करने का स्थान रखता है – यह अभिकथन कि भूतपूर्व अध्यक्ष को बी.सी.सी.आई. की किसी उप-समिति में नामित होना चाहिए ताकि प्रशासक माना जाए वह टिकाऊ नहीं है – यह निर्णय करने के लिए कि वादी को दीवानी वाद दायर करने का अधिकार है अथवा नहीं वादी का स्थान अथवा योग्यता ही स्थापित की जानी है तथा यह प्रश्न नहीं कि बी.सी.सी.आई. संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ में 'राज्य' है जो अनुच्छेद 226 और/अथवा 227 तथा अनुच्छेद 32 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार आह्वान करने की शर्त है किन्तु निश्चय ही दीवानी वाद अथवा निषेधाज्ञा आवेदन दायर करने के लिए नहीं – एक बार यह अभिनिर्धारित हो जाए कि वादी/अपीलकर्ता प्रशासक की परिभाषा के अनुसार बी.सी.सी.आई. का प्रशासक भी था तो बी.सी.सी.आई. के विनियम में संशोधन को चुनौती देने की उसकी योग्यता इस आधार पर अस्वीकार्य नहीं मानी जा सकती कि बी.सी.सी.आई. संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ में 'राज्य' नहीं है – हितों का टकराव के लिए किसी वास्तविक आर्थिक लाभ अथवा हानि का वास्तविक प्रमाण आवश्यक नहीं है – द्वितीय उत्तरदाता आवश्यक रूप से बोली प्रक्रिया, निविदा के डिजाइन, खेल के नियमों, आई.पी.एल. के संबंध में बी.सी.सी.आई. के भविष्य के योजनाओं के बारे में अत्यंत संवेदनशील सूचनाओं का भागीदार था तथा इसलिए यह कल्पना से परे है कि बी.सी.सी.आई. के किसी प्रमुख पदाधिकारी को ऐसी अंतर्गामी सूचनाएँ जो आवश्यक रूप से प्राप्त होती हैं उनका बोलीकर्ता की क्षमता में उपयोग तथा दुरुपयोग न किया गया हो – अपीलकर्ता ने पूरी तरह प्रथम दृष्ट्या मामला बनाया कि यह संशोधन मनमानी तथा द्वितीय उत्तरदाता के पक्ष में पक्षपातपूर्ण है*

तथा इसलिए यह निषेधाज्ञा प्रदान करने के लिए उपयुक्त मामला है जिसमें अपीलाधीन संशोधन को निलंबित अथवा स्थगित रखा जाए – तथापि चूँकि द्वितीय उत्तरदाता पहले ही बोली में भाग ले चुका है तथा सफल हुआ है तथा चेन्नई सुपर किंग का स्वामी है उसे यह विकल्प खुला छोड़ा जाता है कि वह बी.सी.सी.आई. का पदाधिकारी बने रहना चाहता है अथवा आई.पी.एल. चेन्नई सुपर किंग का स्वामित्व रखना चाहता है – उच्च न्यायालय अपीलकर्ता द्वारा दावा की गई अस्थायी निषेधाज्ञा प्रदान न करने में उचित नहीं था – पंचाल, न्यायमूर्ति के अनुसार उच्च न्यायालय अपीलकर्ता द्वारा दावा की गई अस्थायी निषेधाज्ञा प्रदान न करने में उचित था – ***मतभेद होने के कारण मामला बड़े पीठ को निर्देशित किया गया*** *– बड़े पीठ को निर्देशित – भारत का संविधान, 1950 – अनुच्छेद 12, 32, 226, 227।*

प्रथम उत्तरदाता, भारत में क्रिकेट नियंत्रण बोर्ड (बी.सी.सी.आई.) एक सोसायटी है जो सोसायटीज रजिस्ट्रेशन अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत है तथा जिसका अपना ज्ञापन संघ, नियम तथा विनियम हैं। बी.सी.सी.आई. के विनियमों में खिलाड़ियों, टीम अधिकारियों, प्रबंधकों, अंपायरों तथा प्रशासकों के लिए नियम शामिल किए गए हैं। विनियम में खंड 6.2.4 में कहा गया था "कोई प्रशासक बी.सी.सी.आई. के किसी आयोजन में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किसी व्यावसायिक रुचि नहीं रखेगा।" विनियम में आगे कहा गया था कि बी.सी.सी.आई. का पदाधिकारी प्रशासक है।

अपीलकर्ता जो बी.सी.सी.आई. का भूतपूर्व अध्यक्ष था ने बी.सी.सी.आई. के अध्यक्ष के समक्ष भूतपूर्व अध्यक्ष की क्षमता में दो शिकायतें दायर कीं जिसमें अभिकथन किया गया कि द्वितीय उत्तरदाता को अयोग्यता हुई है इस आधार पर कि वह बी.सी.सी.आई. का पदाधिकारी होने के साथ-साथ इंडिया सीमेंट्स लिमिटेड का अध्यक्ष तथा प्रबंध निदेशक होने के कारण इंडियन प्रीमियर लीग (आई.पी.एल.) के स्वामित्व के लिए आयोजित नीलामी में भाग लेने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए थी जिसमें उसे सफल बोलीकर्ता घोषित किया गया तथा इस प्रकार उसने चेन्नई सुपर किंग का स्वामित्व प्राप्त किया। अपीलकर्ता की शिकायतों पर

कोई प्रतिक्रिया नहीं मिली जिसने उसे उच्च न्यायालय के समक्ष वाद दायर करने के लिए प्रेरित किया। अपीलकर्ता ने द्वितीय उत्तरदाता के विरुद्ध खंड 6.2.4 को प्रवर्तित करने की मांग की। उक्त वाद दायर करने के कुछ दिनों पश्चात् बी.सी.सी.आई. ने दिनांक 27.9.2008 को खंड 6.2.4 में संशोधन प्रवेश किया अपवाद सृजित करके। संशोधन के पश्चात् उक्त खंड इस प्रकार पढ़ा गया "कोई प्रशासक बी.सी.सी.आई. के किसी आयोजन में आई.पी.एल., चैंपियंस लीग तथा ट्वेंटी 20 को अपवर्जित करके प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किसी व्यावसायिक रुचि नहीं रखेगा।"उक्त संशोधन को अपीलकर्ता द्वारा द्वितीय वाद दायर करके चुनौती दी गई जिसमें अपीलकर्ता ने निषेधाज्ञा के लिए दो आवेदन भी दायर किए। प्रथम आवेदन में उसने बी.सी.सी.आई. को द्वितीय उत्तरदाता को सामान्य निकाय बैठक में भाग लेने की अनुमति देने से अस्थायी निषेधाज्ञा की मांग की किन्तु द्वितीय आवेदन में उसने संशोधन के विरुद्ध निषेधाज्ञा की मांग की तथा अभिवचन करके उसे निलंबन में डालने की प्रार्थना की।

उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने अस्थायी आवेदनों को इस आधार पर खारिज कर दिया कि कोई बाहरी व्यक्ति समिति के विनियमों पर प्रश्न नहीं उठा सकता तथा न्यायालय भी समिति के आंतरिक प्रबंधन में हस्तक्षेप नहीं कर सकते। एकल न्यायाधीश ने तथापि मुख्य मुद्दे तथा खंड 6.2.4 में प्रवेश किए गए संशोधन पर विचार नहीं किया। खंडपीठ ने एकल न्यायाधीश के आदेश को बनाए रखा।

वर्तमान अपील में विचार के लिए उत्पन्न प्रश्न यह था कि क्या अपीलकर्ता को विनियमों के खंड 6.2.4 में बी.सी.सी.आई. द्वारा प्रवेश किए गए संशोधन को चुनौती देने वाले दीवानी वाद दायर करने का स्थान है क्योंकि वह केवल बी.सी.सी.आई. का भूतपूर्व अध्यक्ष है तथा क्या वही उसे प्रशासक के रूप में कोई अधिकार प्रदान कर सकता है ताकि बी.सी.सी.आई. द्वारा प्रवेश किए गए संशोधन को चुनौती दे जो बी.सी.सी.आई. की गतिविधियों में प्रशासक की व्यावसायिक रुचि की निषेध को पतला करके 'हितों का टकराव' उत्पन्न करता है तथा यदि उत्तर सकारात्मक हैं तो क्या बी.सी.सी.आई. द्वारा खंड 6.2.4 में

प्रवेश किया गया संशोधन निषेधाज्ञा प्रदान करने के लिए उपयुक्त है जिसमें उसे स्थगित/निलंबित रखा जाए क्योंकि वह स्पष्ट रूप से बी.सी.सी.आई. तथा द्वितीय उत्तरदाता के बीच हितों का टकराव उत्पन्न करता है चूँकि वह बी.सी.सी.आई. का पदाधिकारी/प्रशासक रहते हुए अपनी व्यावसायिक रुचि को बढ़ावा देता है जो आई.पी.एल. चेन्नई सुपर किंग के स्वामित्व के लिए नीलामी में भाग लिया तथा सफल हुआ।

बड़े पीठ को निर्देशित करते हुए (मतभेद के दृष्टिगत), न्यायालय ने

जे.एम. पंचाल, न्यायमूर्ति के अनुसार **(निर्णय अप्रतिवेद्य बनाया गया)**

ज्ञान सुधा मिश्रा, न्यायमूर्ति के अनुसार **(असहमति में)**

अभिनिर्धारितः 1.1 बी.सी.सी.आई. के ज्ञापन तथा नियम एवं विनियम, 2008 का खंड 1(एन) 'प्रशासक' शब्द को परिभाषित करता है जिसका अर्थ है तथा इसमें शामिल हैं भारत में क्रिकेट नियंत्रण बोर्ड (बी.सी.सी.आई.) के वर्तमान तथा भूतपूर्व अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, मानद सचिव, मानद कोषाध्यक्ष, मानद सह-सचिव, बी.सी.सी.आई. से संबद्ध सदस्यों के वर्तमान तथा भूतपूर्व अध्यक्ष तथा सचिव तथा बी.सी.सी.आई. के ज्ञापन तथा नियम एवं विनियम में परिभाषित किसी भी उप-समिति में बी.सी.सी.आई. द्वारा नामित कोई व्यक्ति। अपीलकर्ता निर्विवाद रूप से बी.सी.सी.आई. का भूतपूर्व अध्यक्ष था तथा इसलिए 'प्रशासक' की अस्पष्ट परिभाषा के दृष्टिगत जिसमें भूतपूर्व तथा वर्तमान अध्यक्ष तथा सचिव तथा बी.सी.सी.आई. से संबद्ध सदस्य शामिल हैं यह स्वीकार करना कठिन है कि अपीलकर्ता को बी.सी.सी.आई. द्वारा प्रवेश किए गए संशोधन को चुनौती देने वाले दीवानी वाद दायर करने का स्थान नहीं था। [कंडिका 12] [468-एच; 469-ए-बी]

1.2. न्यायमूर्ति पंचाल द्वारा लिया गया दृष्टिकोण कि केवल यदि बी.सी.सी.आई. की किसी उप-समिति में भूतपूर्व अध्यक्ष नामित किया जाता है तो ही वह 'प्रशासक' माना जाएगा अन्यथा नहीं वह स्वीकृत नहीं है। यह दृष्टिकोण बी.सी.सी.आई. 2008 के विनियमों में दी गई 'प्रशासक' की स्पष्ट परिभाषा के स्पष्ट रूप से विरोधी है। विनियम का खंड 32

निश्चय ही कदाचार से निपटता है तथा किसी भी पक्ष से प्राप्त शिकायत अथवा प्रकाशित या प्रसारित किसी प्रतिवेदन पर अथवा अपने स्वयं के प्रस्ताव पर अनुशासनहीनता अथवा कदाचार के विषय में आवश्यक प्रक्रिया से निपटता है। विनियम का खंड 32(वी) सदस्य, सहयोगी सदस्य, प्रशासक, खिलाड़ी, अंपायर, टीम अधिकारी, रेफरी अथवा चयनकर्ता जैसा भी मामला हो के निष्कासन के संबंध में प्रावधान भी करता है तथा यदि उनमें से कोई दोषी पाया जाता है तथा बी.सी.सी.आई. द्वारा निष्कासित किया जाता है तो वह भविष्य में किसी पद अथवा कार्यालय को धारण करने अथवा बोर्ड की किसी समिति में शामिल होने अथवा किसी सदस्य अथवा सहयोगी सदस्य में प्रवेश पाने का हकदार नहीं होगा। खंड 32 इस प्रकार स्पष्ट रूप से बी.सी.सी.आई. के पदाधिकारियों सहित उसके सभी घटकों के कदाचार तथा उनसे निपटने की प्रक्रिया से निपटता है तथा इस प्रयोजन के लिए यह यह भी निर्धारित करता है कि कदाचार से निपटने वाली उप-समिति के सदस्य के रूप में सक्षम व्यक्ति कौन होंगे। किन्तु यह मानना कि विनियम के खंड 1(एन) में दी गई 'प्रशासक' की परिभाषा के बावजूद जिसमें बी.सी.सी.आई. के अध्यक्ष तथा भूतपूर्व अध्यक्ष स्पष्ट रूप से शामिल हैं वही प्रशासक नहीं माना जाएगा जब तक कि वह अनुशासन समिति की उप-समिति का सदस्य न हो जो किसी पदाधिकारी सहित उसके सभी घटकों के कदाचार से निपटने के लिए गठित है जैसा कि खंड 32 के अंतर्गत परिकल्पित है यह बहुत दूर की व्याख्या होगी। अपीलकर्ता बी.सी.सी.आई. के भूतपूर्व अध्यक्ष की क्षमता में इसलिए विनियम के खंड 1(एन) में उल्लिखित उक्त परिभाषा के अर्थ में प्रशासक था तथा इस प्रकार वह अपनी व्यक्तिगत क्षमता में वाद दायर करने के लिए सक्षम था। विनियम का खंड 1(एन) प्रशासक की परिभाषा की स्पष्ट अभिव्यक्ति को नजरअंदाज करके खंड 32 की सहायता से व्याख्या करके उसे निष्प्रभावी बनाने की अनुमति नहीं दी जा सकती जो 'भूतपूर्व अध्यक्ष' की परिभाषा तथा अर्थ से दूर से भी संबंधित नहीं है किन्तु केवल कदाचार के परिणाम तथा कथित कदाचार के मामलों से निपटने की प्रक्रिया से संबंधित एक पृथक तथा विशिष्ट

प्रावधान है जो उन मामलों से निपटने की कल्पना नहीं करता जिसमें बी.सी.सी.आई. के विनियम में किसी संशोधन की वैधता तथा प्रभावशीलता चुनौती में है। [कंडिका 12, 13] [469-ए-जी; 470-बी-ई]

1.3. वर्तमान मामले में अधिस्थिति के प्रश्न से निपटते हुए कि क्या अपीलकर्ता संशोधन को चुनौती देने के लिए वाद दायर करने का विधिक रूप से हकदार था अथवा नहीं विनियम का खंड 1(एन) जो 'प्रशासक' की परिभाषा में 'भूतपूर्व अध्यक्ष' को शामिल करता है वह एकमात्र प्रासंगिक प्रावधान है तथा उसके प्रभाव को पतला करने के लिए विनियम के खंड 32 पर भरोसा नहीं किया जा सकता। जब खंड 1(एन) स्पष्ट तथा स्पष्ट रूप से 'प्रशासक' शब्द को परिभाषित करता है तथा स्पष्ट रूप से घोषित करता है कि 'प्रशासक' का अर्थ है तथा इसमें शामिल हैं बी.सी.सी.आई. के वर्तमान तथा भूतपूर्व अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, मानद सचिव, मानद कोषाध्यक्ष, मानद सह-सचिव तथा बी.सी.सी.आई. से संबद्ध सदस्यों के भूतपूर्व तथा वर्तमान अध्यक्ष तथा सचिव इतना कि बी.सी.सी.आई. से संबद्ध सदस्य अथवा सहयोगी सदस्य का प्रतिनिधि तथा विनियम में परिभाषित बोर्ड द्वारा नियुक्त किसी भी उप-समिति से जुड़ा कोई व्यक्ति भी प्रशासक की परिभाषा में शामिल किया गया है यह मानना कठिन होगा कि ऐसा प्रशासक भी अनुशासन से निपटने के लिए गठित उप-समिति का सदस्य होना चाहिए ताकि विनियम में प्रवेश किए गए संशोधन को चुनौती दे सके यह पूरी तरह भूल जाते हुए कि बी.सी.सी.आई. के संशोधन को चुनौती देने की शक्ति खिलाड़ियों, अंपायरों अथवा प्रशासक के विरुद्ध कदाचार के मामलों से निपटने से पूर्णतः भिन्न है। नियम की सादा तथा शाब्दिक व्याख्या स्पष्ट रूप से संकेत देती है कि भूतपूर्व अध्यक्ष भी 'प्रशासक' के अर्थ में असंदिग्ध रूप से शामिल किए गए हैं तथा जबकि प्रशासक अनुशासन समिति के लिए उप-समिति का सदस्य भी हो सकता है यह इस प्रकार व्याख्या नहीं की जा सकती कि भूतपूर्व अध्यक्ष प्रशासक की परिभाषा से बाहर रहता है जब तक कि वह अनुशासनिक कार्यवाही के लिए उप-समिति का सदस्य न हो। यह मानना कठिन है कि ऐसा उद्देश्यपूर्ण

व्याख्या देने के लिए होगा क्योंकि उससे कोई उद्देश्य अनुमानित नहीं किया जा सकता है इसके विपरीत उद्देश्य स्पष्ट रूप से लिखा है कि यह द्वितीय उत्तरदाता को विनियम के खंड 6.2.4 द्वारा लगाए गए निषेध से छूट प्रदान करने के बराबर है। यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है तथा दूर से भी अस्पष्ट नहीं है कि खंड 32 का उद्देश्य तथा प्रयोजन केवल किसी खिलाड़ी, अंपायर, प्रशासक आदि के कदाचार से निपटने की प्रक्रिया निर्धारित करना है तथा यह विनियम में संशोधन की प्रक्रिया, उद्देश्य अथवा प्रभावशीलता से दूर से भी संबंधित नहीं है न ही विनियम में संशोधन प्रवेश करने के तरीके तथा प्रणाली से ताकि यह अनुमान लगाया जाए कि जब तक प्रशासक चाहे भूतपूर्व अथवा वर्तमान अनुशासन समिति अथवा उप-समिति का सदस्य न हो वह बी.सी.सी.आई. द्वारा विनियम में संशोधन के माध्यम से प्रवेश की गई किसी अवैधता के विरुद्ध कार्यवाही आरंभ करने के लिए सक्षम नहीं माना जा सकता यह स्पष्ट रूप से संदर्भ से बाहर तर्क है तथा प्रशासक के विनियम में प्रवेश किए गए संशोधन को चुनौती देने के स्थान के प्रश्न से पूर्णतः असंबंधित है। [कंडिका 14-16] [470-ई-एच; 471-ए-एफ; 472-बी-डी]

1.4. वर्तमान मामला किसी सदस्य के विरुद्ध किसी अनुशासनिक कार्यवाही से दूर से भी संबंधित नहीं है क्योंकि वाद में विशिष्ट मुद्दा यह है कि क्या बी.सी.सी.आई. खंड 6.2.4 में संशोधन प्रवेश कर सकता था यह तथ्य नजरअंदाज करते हुए तथा अनदेखा करते हुए कि बी.सी.सी.आई. का वर्तमान पदाधिकारी आई.पी.एल. अथवा ट्वेंटी 20 मैचों के स्वामित्व के लिए नीलामी में भाग लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती क्योंकि यह बी.सी.सी.आई. के हित से टकराएगा तथा संघर्ष करेगा। व्याख्या का अच्छी तरह स्थापित सिद्धांत है कि जब विधि में भाषा सादा है तथा एक अर्थ स्वीकार करती है तो व्याख्या का कार्य उत्पन्न होने के लिए कठिन कहा जा सकता है जैसा वर्तमान मामले में जहां 'प्रशासक' की परिभाषा बी.सी.सी.आई. के विनियम में स्पष्ट रूप से दी गई है। किन्तु भूतपूर्व अध्यक्ष को तथा उसके बी.सी.सी.आई. की कार्रवाई को चुनौती देने की योग्यता को बाहर करने के लिए ताकि

बी.सी.सी.आई. द्वारा द्वितीय उत्तरदाता को चेन्नई सुपर किंग के स्वामित्व के लिए बोली प्रक्रिया में भाग लेने में सहायता करने के लिए शीघ्र तथा जल्दबाजी में प्रवेश किया गया संशोधन पर प्रश्न उठाने से रोका जाए तथा 'प्रशासक' की परिभाषा की व्याख्या इस प्रकार की जाए कि वह वाद दायर करने के लिए सक्षम नहीं था यह 'प्रशासक' अभिव्यक्ति को उद्देश्यपूर्ण तथा अर्थपूर्ण व्याख्या देने के बराबर कठिन कहा जा सकता है क्योंकि कोई न्यायपूर्ण कारण की सेवा करने का उद्देश्य अथवा वस्तु पूर्णतः अनुपस्थित है। निर्माण के प्रश्न से निपटने का सुरक्षित तथा अधिक सही मार्ग शब्दों को स्वयं लेना है तथा यदि संभव हो तो उनके अर्थ को बिना किसी प्रथम उदाहरण के मामलों के संदर्भ के बिना समझना है। प्रावधान की शाब्दिक निर्माण को उसके प्रभाव अथवा परिणाम पर विचार किए बिना प्रतिबंधात्मक निर्माण मानने की अनुमति नहीं दी जा सकती क्योंकि वे अक्सर शब्दों के वास्तविक अर्थ को संकेत देते हैं। यह निश्चय ही सत्य है कि यदि शब्दों का शाब्दिक अनुप्रयोग विधानमंडल की स्पष्ट मंशा को विफल कर देता है तथा पूर्णतः अयुक्तियुक्त परिणाम उत्पन्न करता है तो कुछ हिंसा की जा सकती है ताकि वह स्पष्ट मंशा प्राप्त की जाए तथा युक्तियुक्त निर्माण उत्पन्न किया जाए। किन्तु असुविधा तथा अयुक्तियुक्तता का प्रश्न विशिष्ट घटनाओं के प्रकाश में देखा जाना चाहिए। यह भी कठिन होगा अच्छी तरह स्थापित स्थिति को अनदेखा करना कि यदि कोई विशेष निर्माण असामान्यता उत्पन्न नहीं करता तथा प्रयुक्त शब्द सादा हैं तो असुविधा के संबंध में तर्क का थोड़ा भी भार है। यह भी समान रूप से अच्छी तरह स्थापित विधियों की निर्माण का नियम है कि प्रथम उदाहरण में शब्दों का व्याकरणिक अर्थ अपनाया जाना चाहिए तथा विधि के शब्दों को प्रथम दृष्ट्या उनके सामान्य अर्थ में दिया जाना चाहिए। जहां विधि की व्याकरणिक निर्माण स्पष्ट तथा प्रकट है वह निर्माण प्रबल होना चाहिए जब तक कि विपरीत कोई प्रबल तथा स्पष्ट कारण न हो किन्तु जब शब्दों में कोई अस्पष्टता नहीं है तो व्याख्या के लिए कोई स्थान नहीं है। यदि विधि की भाषा स्पष्ट तथा असंदिग्ध है तो न्यायालय को उसे प्रभावी बनाना चाहिए तथा

विधानमंडल/विधि निर्माता की वास्तविक अथवा कथित मंशा को पूरा करने के लिए उसके संचालन को विस्तारित करने का कोई अधिकार नहीं है। जब भाषा न केवल सादा है बल्कि केवल एक अर्थ स्वीकार करती है तो व्याख्या का कार्य उत्पन्न होने के लिए कठिन कहा जा सकता है। विधानमंडल (विधि निर्माता) द्वारा शामिल नहीं किया गया वही न्यायालय द्वारा उद्देश्यपूर्ण व्याख्या के सिद्धांत से नहीं किया जा सकता। उक्त व्याख्या के स्वास्थ्यप्रद सिद्धांतों पर विचार करते हुए 'प्रशासक' शब्द की परिभाषा भूतपूर्व अध्यक्ष को प्रशासक के अर्थ से बाहर नहीं करती ताकि यह माना जाए कि प्रशासक द्वारा दीवानी वाद दायर करके तथा बी.सी.सी.आई. द्वारा खंड 6.2.4 में प्रवेश किए गए संशोधन पर प्रश्न उठाकर कार्रवाई अपीलकर्ता के स्थान अथवा योग्यता के आधार पर मनोरंजन करने के लिए उपयुक्त नहीं थी। [कंडिका 18–22] [472-जी-एच; 473-ए-डी; एफ-एच; 474-ए-बी-सी-जी; 475-ए-सी]

डैंटल काउंसिल ऑफ इंडिया तथा अन्य बनाम हरि प्रकाश तथा अन्य, **(2001) 8 एस.सी.सी. 61 : 2001 (2) सप्ल. एस.सी.आर. 310 — संदर्भित।**

द अटॉर्नी जनरल बनाम द म्यूचुअल टोंटाइन वेस्ट मिन्स्टर चैंबर्स एसोसिएशन, लिमिटेड **(1876) 1 एक्स. डी. 469;** चार्ल्स ब्रैडलॉफ बनाम हेनरी लुईस क्लार्क, **(1883)** VIII **ए.सी. 354;** अटॉर्नी जनरल बनाम प्रिंस अर्नेस्ट ऑगस्टस ऑफ हनोवर **(1957) ए.सी. 436 — संदर्भित।**

1.5. चूँकि बी.सी.सी.आई. महत्वपूर्ण सार्वजनिक कार्य करता है जैसे भारतीय टीम का चयन तथा खिलाड़ियों पर नियंत्रण तथा महत्वपूर्ण सार्वजनिक कार्य निष्पादित करना है इसलिए यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह मनमाने, व्यर्थ तथा मनोवैज्ञानिक रूप से कार्य करे ताकि यह माना जाए कि दो वाद अपीलकर्ता के द्वारा दायर करने योग्य नहीं हैं जो यद्यपि निर्विवाद रूप से बी.सी.सी.आई. का भूतपूर्व अध्यक्ष है तथा इसलिए प्रशासक है किन्तु दीवानी वाद दायर करने तथा संशोधन के प्रभाव को निलंबित करने के लिए निषेधाज्ञा का आदेश प्राप्त करने का भी स्थान नहीं रखता इस अभिवचन पर कि चूँकि वह उप-समिति का

सदस्य नहीं था वह बी.सी.सी.आई. विनियम में प्रवेश किए गए संशोधन को चुनौती देने के लिए सक्षम नहीं था। [कंडिका 22, 23] [475-डी-एफ]

मैसर्स जी टेली फिल्म्स लि. तथा अन्य बनाम यूनियन ऑफ इंडिया तथा अन्य **(2005) 1 एस.सी.आर. 913 — लागू नहीं माना गया**

2.1. अपीलकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष संविधान के अनुच्छेद 226 अथवा अनुच्छेद 32 के अंतर्गत उच्च न्यायालय के रिट क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आवेदन नहीं किया था ताकि उत्तरदाताओं को यह अभिकथन करने का आधार मिले कि चूँकि बी.सी.सी.आई. संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ में 'राज्य' नहीं है इसलिए विनियम के अंतर्गत प्रशासक भूतपूर्व अध्यक्ष की क्षमता में भी दीवानी वाद दायर नहीं कर सकता तथा इस प्रकार 'प्रशासक' के रूप में बी.सी.सी.आई. के विनियम में असंवैधानिक संशोधन को चुनौती नहीं दे सकता। यह संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत अपील है जो दो नियमित दीवानी वादों में निषेधाज्ञा प्रदान करने से इंकार करने वाले आदेश से उत्पन्न हुई है। इसलिए उत्तरदाताओं का अभिकथन तथा न्यायमूर्ति पंचाल द्वारा स्वीकृत यह दृष्टिकोण कि चूँकि बी.सी.सी.आई. को राज्य का उपकरण नहीं माना जा सकता इसलिए अपीलकर्ता द्वारा दायर दो वाद बनाए रखने योग्य नहीं हैं स्वीकार करना कठिन है। यह निर्णय करने के लिए कि वादी को दीवानी वाद दायर करने का अधिकार है अथवा नहीं वादी का स्थान अथवा योग्यता ही स्थापित की जानी है तथा यह प्रश्न नहीं कि बी.सी.सी.आई. संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ में राज्य है जो अनुच्छेद 226 और/अथवा 227 तथा अनुच्छेद 32 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार आह्वान करने की शर्त है किन्तु निश्चय ही दीवानी वाद अथवा निषेधाज्ञा आवेदन दायर करने के लिए नहीं। [कंडिका 24, 25] [476-ए-सी-एफ-एच; 477-ए-बी]

2.2. जब दीवानी वाद दायर किया जाता है तो यह प्रश्न कि कोई पक्ष राज्य के उपकरण के दायरे में आता है अथवा नहीं बिल्कुल उत्पन्न नहीं होता तथा पूर्ण तथा एकमात्र विचार यह होगा कि क्या वादी को दीवानी वाद दायर करने का कारण कार्रवाई थी, क्या वह

वाद दायर करने के लिए सक्षम है तथा क्या वाद उसके द्वारा बनाए रखने योग्य है। यदि दीवानी वाद कारण कार्रवाई के अस्तित्व के आधार पर बनाए रखने योग्य है तो उस पर संवैधानिक मुद्दा उठाकर यह कहकर आक्रमण करने का कोई स्थान नहीं है कि वाद बनाए रखने योग्य नहीं है क्योंकि बी.सी.सी.आई. राज्य का उपकरण नहीं है क्योंकि उक्त प्रश्न दीवानी प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के अंतर्गत दीवानी वाद के निर्णय के लिए प्रासंगिक नहीं है न ही दीवानी न्यायालय संवैधानिक न्यायालय हैं जो उस प्रश्न में प्रवेश करें। एक बार यह अभिनिर्धारित हो जाए कि वादी/अपीलकर्ता प्रशासक की परिभाषा के अनुसार बी.सी.सी.आई. का प्रशासक भी है तो बी.सी.सी.आई. के विनियम में प्रवेश किए गए संशोधन को चुनौती देने की उसकी योग्यता इस आधार पर अस्वीकार्य नहीं मानी जा सकती कि बी.सी.सी.आई. संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ में 'राज्य' नहीं है क्योंकि दीवानी वाद निश्चय ही दायर किए जा सकते हैं तथा बनाए रखने योग्य माने जा सकते हैं यदि वादी यह मामला बना सके कि वाद दायर करने के लिए कारण कार्रवाई उत्पन्न हुई है तथा यदि वह कारण कार्रवाई को बनाए रख सके तथा यह भी स्थापित कर सके कि वह वाद का उचित पक्षकार है तो वही न्यायालय द्वारा विचारण किया जाना चाहिए तथा बनाए रखने योग्यता के आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता। वास्तव में जब दीवानी उपचार के लिए दीवानी वाद दायर किया जाता है तो विवादित पक्ष द्वारा यह शर्त संतुष्ट करना कि वह राज्य का उपकरण है उसकी कोई प्रासंगिकता नहीं है क्योंकि दीवानी न्यायालयों को संवैधानिक कार्य निष्पादित नहीं करना है ताकि इस प्रश्न में प्रवेश करें। यदि वे ऐसा करते हैं तो यह अपनी क्षेत्राधिकार की सीमाओं से परे जाना होगा। इसलिए यह प्रश्न इस याचिका में उठाए गए विवाद के प्रयोजन के लिए स्पष्ट रूप से अप्रासंगिक है। [कंडिका 25, 27] [477-डी-जी; 479-ए-डी]

टी.सी. मैथ्यू बनाम के. बालाजी अय्यर तथा अन्य **एस.एल.पी.(आपराधिक) सं. 10107 सन् 2010 — संदर्भित।**

3.1. हितों का टकराव के लिए किसी वास्तविक आर्थिक लाभ अथवा हानि का वास्तविक प्रमाण आवश्यक नहीं है क्योंकि 'हितों का टकराव' का सिद्धांत बहुत व्यापक, समता, विधिक तथा नैतिक सिद्धांत है जो भविष्य और/अथवा संभावित स्थिति के उत्पन्न होने को भी रोकने का प्रयास करता है जो किसी व्यावसायिक रुचि के माध्यम से लाभ अथवा वादा को बाधित करेगी जिसमें मुख्य अभिनेता शामिल हैं। 'हितों का टकराव' नियम का संपूर्ण प्रयोजन रोकना है न कि केवल उन स्थितियों का उपचार करना जहां किसी के कर्तव्य के निष्पादन को व्यावसायिक हितों से प्रभावित किया जा सकता है जो ऐसे कर्तव्यों के निष्पक्ष तथा निर्भीक निष्पादन की अनुमति नहीं देते। इस पहलू पर यह प्रमाणित किया गया है कि द्वितीय उत्तरदाता आवश्यक रूप से बोली प्रक्रिया, निविदा के डिजाइन, खेल के नियमों, आई.पी.एल. के संबंध में बी.सी.सी.आई. के भविष्य के योजनाओं आदि के बारे में अत्यंत संवेदनशील सूचनाओं का भागीदार था। यह कल्पना से परे है कि बी.सी.सी.आई. के किसी प्रमुख पदाधिकारी को ऐसी अंतर्गामी सूचनाएँ जो आवश्यक रूप से प्राप्त होती हैं उनका बोलीकर्ता की क्षमता में उसके कंपनी इंडिया सीमेंट्स लि. के माध्यम से द्वितीय उत्तरदाता द्वारा उपयोग तथा दुरुपयोग न किया गया हो दोनों संभावित तथा वास्तविक सामग्रियों का। इस प्रकार कोई कृत्रिम चीनी दीवारें नहीं मानी जा सकतीं द्वितीय उत्तरदाता की बहुविध व्यक्तित्वों तथा गतिविधियों के बीच दोनों निविदा जारीकर्ता तथा बोलीकर्ता के रूप में। इसी कारण न्यायालयों ने 'हितों का टकराव' के सिद्धांत को व्यक्ति के न्यासी चरित्र से जोड़ा है जो स्वयं को टकराव की स्थिति में नहीं डालना चाहिए तथा न्यासी के साथ न्यासी के सिद्धांत से जोड़ा है। [कंडिका 28.1] [480-सी-एच; 481-ए]

पीयर्स लेस्ली पीटर एंड कंपनी लि. बनाम वायलेट आउच्टरलोनी वापशर एवं अन्य **(1969) 3 एस.सी.आर. 203 — संदर्भित।**

3.2. यद्यपि किसी भी व्यक्ति ने अपने किसी कार्य से बी.सी.सी.आई. को वास्तविक हानि नहीं पहुँचाई हो किन्तु कार्य यह रहता है कि कंपनी के अध्यक्ष के रूप में अपनी

स्थिति के कारण जो आई.पी.एल. टूर्नामेंट के स्वामित्व के लिए बोली में भाग लिया तथा उसी समय बी.सी.सी.आई. का पदाधिकारी होने के कारण यह स्पष्ट रूप से बी.सी.सी.आई. के हितों का टकराव उत्पन्न करने के लिए बाध्य है। तथ्य यह रहता है कि द्वितीय उत्तरदाता इंडिया सीमेंट्स लि. के उपाध्यक्ष तथा प्रबंध निदेशक तथा आई.पी.एल. की शासी परिषद के पदेन सदस्य के रूप में अपनी स्थिति के कारण बी.सी.सी.आई. द्वारा आई.पी.एल. मैचों के लिए आयोजित नीलामी में भाग लेने के मार्ग में आया तथा इसी प्रयोजन के लिए संशोधन शीघ्रता से प्रवेश किया गया ताकि द्वितीय उत्तरदाता को आई.पी.एल. चेन्नई सुपर किंग के स्वामित्व से अयोग्य नहीं ठहराया जाए। वास्तव में 'हितों के टकराव के प्रबंधन' की अवधारणा ने पिछले कई वर्षों में संयुक्त राज्य अमेरिका सहित सभी उन्नत देशों में तथा विश्व के अधिकांश भाग में सरकारों तथा नागरिकों दोनों का ध्यान आकर्षित किया है। [कंडिका 28.2] [481-सी-डी-ई-एच]

ब्रे बनाम ब्रैडफोर्ड (1896) ए.सी. 44 — संदर्भित।

3.3. समता न्यायालय का यह एक अटल नियम है कि न्यासी स्थिति में कोई व्यक्ति, जब तक अन्यथा स्पष्ट रूप से प्रावधान न हो, लाभ कमाने का हकदार नहीं है; उसे ऐसी स्थिति में नहीं डालने की अनुमति है जहां उसका हित तथा कर्तव्य टकराएँ। बी.सी.सी.आई. ने स्वयं इस सिद्धांत को सुनिश्चित करने के लिए खंड 6.2.4 को शामिल किया था। किन्तु उसके बाद बी.सी.सी.आई. ने बिना किसी विचार-विमर्श तथा चर्चा के इस खंड में संशोधन प्रवेश किया तथा ट्वेंटी-20 आई.पी.एल. अथवा चैंपियंस लीग मैचों को इस नियम से अपवाद बनाया जिसके लिए उत्तरदाता कोई विश्वसनीय स्पष्टीकरण नहीं दे सका। इस प्रकार अपीलकर्ता ने स्पष्ट रूप से प्रबल प्रथम दृष्ट्या मामला बनाया कि संशोधन द्वितीय उत्तरदाता को लाभ पहुँचाने के लिए तिरछे उद्देश्य से प्रवेश किया गया था ताकि उसे नीलामी में भाग लेने तथा चेन्नई सुपर किंग के स्वामित्व से अयोग्य नहीं ठहराया जाए जबकि वह बी.सी.सी.आई. का कोषाध्यक्ष तथा उसके बाद सचिव रहते हुए प्रशासक बना रहा तथा इस

प्रकार अपीलकर्ता ने अपनी अभिवचन को स्थापित किया कि बी.सी.सी.आई. द्वारा खंड 6.2.4 में प्रवेश किया गया संशोधन बी.सी.सी.आई. द्वारा प्रयोग की गई संशोधन शक्ति का दुरुपयोग था जहाँ तक संशोधन की शक्ति का प्रवेश क्रिकेट खेल को बढ़ावा देने के लिए नहीं बल्कि द्वितीय उत्तरदाता के हित को बढ़ावा देने के लिए किया गया क्योंकि यह स्पष्ट से अधिक स्पष्ट है कि संशोधन के बिना वह बोली में भाग लेने का हकदार नहीं होता क्योंकि वह बी.सी.सी.आई. का कोषाध्यक्ष था तथा इसलिए संशोधन के बिना वह बोली में भाग लेने तथा बी.सी.सी.आई. के पदाधिकारी के रूप में कोषाध्यक्ष तथा साथ ही चेन्नई सुपर किंग के स्वामी के दोहरे दर्जे का आनंद लेने के लिए भी योग्य नहीं था। [कंडिका 28, 29] [482-सी-डी-ई-एच; 483-ए-सी]

3.4. अपीलकर्ता तथा हितों के टकराव की अवधारणा पर विचार तथा उसके प्रभाव के आधार पर निश्चित रूप से प्रथम दृष्ट्या मामला बनाया कि यह द्वितीय उत्तरदाता के व्यावसायिक हित की सेवा करता है जिससे बी.सी.सी.आई. की गतिविधियों के साथ हितों का टकराव उत्पन्न हुआ क्योंकि वह प्रशासक/पदाधिकारी के रूप में कोषाध्यक्ष रहते हुए बी.सी.सी.आई. के निर्णय को प्रभावित करने में सक्षम था तथा साथ ही आई.पी.एल. नीलामी में भाग लिया जो स्पष्ट रूप से व्यावसायिक हित उत्पन्न करता है जो यदि संशोधन प्रवेश न किया गया होता तो निषिद्ध होता। यदि प्रशासक को विनियम के अनुसार बी.सी.सी.आई. के आयोजनों में किसी व्यावसायिक रुचि से स्पष्ट रूप से निषिद्ध किया गया है तो यह समझ से परे है कि केवल एक वर्ग के मैचों अर्थात् आई.पी.एल., ट्वेंटी-20 तथा चैंपियंस लीग को अपवाद कैसे बनाया जा सकता है तथा पदाधिकारी को बोली में भाग लेने की अनुमति दी जा सकती है किन्तु टेस्ट मैचों सहित अन्य मैचों से रोका जा सकता है। इस प्रकार अपीलकर्ता ने पूरी तरह प्रथम दृष्ट्या मामला बनाया कि यह संशोधन मनमानी तथा द्वितीय उत्तरदाता के पक्ष में पक्षपातपूर्ण है तथा इसलिए यह निषेधाज्ञा प्रदान करने के लिए उपयुक्त मामला है जिसमें बी.सी.सी.आई. विनियम के खंड 6.2.4 में प्रवेश किए गए अपीलाधीन संशोधन को निलंबित

अथवा स्थगित रखा जाए। तथापि चूँकि द्वितीय उत्तरदाता पहले ही बोली में भाग ले चुका है तथा सफल हुआ है तथा चेन्नई सुपर किंग का स्वामी है इसलिए उसे यह विकल्प खुला छोड़ा जाना उचित है कि वह बी.सी.सी.आई. का पदाधिकारी बने रहना चाहता है अथवा आई.पी.एल. चेन्नई सुपर किंग का स्वामित्व रखना चाहता है। अपीलकर्ता ने अपनी बात को इस हद तक सफल बनाया कि संशोधन को निलंबित रखने के लिए उपयुक्त है तथा कम से कम वाद के अंतिम निर्णय तक संशोधन के विरुद्ध निषेधाज्ञा प्रदान की जाए। नीचे के न्यायालयों ने निषेधाज्ञा आवेदन पर विचार करते हुए परिस्थिति अथवा स्थिति के अनुसार उपचार को ढालने में पूर्ण सक्षम थे किन्तु वे इसमें बुरी तरह असफल रहे। इसलिए दिनांक 27.9.2008 का अपीलाधीन संशोधन उसी के विरुद्ध निषेधाज्ञा प्रदान करके निलंबित किए जाने के लिए उपयुक्त था। यह स्पष्ट रूप से ऐसा है क्योंकि यह अनदेखा करना कठिन होगा कि बहुविध निष्ठाएँ बी.सी.सी.आई. की गतिविधियों के साथ व्यावसायिक हित उत्पन्न कर सकती हैं तथा इस प्रकार हितों का टकराव उत्पन्न कर सकती हैं क्योंकि बोर्ड का वित्तीय अथवा व्यक्तिगत हित बोर्ड के प्रशासक के व्यावसायिक तथा व्यक्तिगत हित से स्पष्ट रूप से असंगत होगा। इसके अतिरिक्त समता तथा निष्पक्षता का नियम प्रदान करता है कि कोई व्यक्ति जो दूसरे के प्रति न्यास की स्थिति में है वह उस स्थिति से प्रभावित मामलों में अपना हित आगे नहीं बढ़ा सकता उदाहरण के लिए उस दूसरे के खर्च पर व्यापार करके तथा लाभ कमाकर क्योंकि विधिक विवेक का नियम अनिवार्य करता है कि एक बार न्यासी को अपने निष्ठा के कर्तव्य के उल्लंघन में दिखाया जाए तो उसे किसी भी लाभ को त्यागना होगा यद्यपि वह ईमानदारी से तथा अपने मूल के सर्वोत्तम हित में कार्य करता हो। वर्तमान मामले में जब बी.सी.सी.आई. ने आई.पी.एल. टीम के स्वामित्व के लिए नीलामी आयोजित की तथा प्रशासक द्वितीय उत्तरदाता ने बोली में भाग लिया तो वास्तविक तथा/अथवा कथित हितों के टकराव की विभिन्नता को बाहर नहीं किया जा सकता। इसमें अंतर्गामी सूचना तक पहुँच, नीलामी आयोजित करने वाले निर्णयकर्ताओं पर संभावित अनुचित प्रभाव आदि शामिल हैं।

बी.सी.सी.आई. विनियम के 6.2.4 में दिनांक 27.9.2008 को प्रवेश किए गए अपीलाधीन संशोधन के संचालन को निलंबित करने का निर्देश देकर निषेधाज्ञा प्रदान की जाती है। यदि द्वितीय उत्तरदाता आई.पी.एल. चेन्नई सुपर किंग के स्वामित्व तथा संचालन को जारी रखने का विकल्प चुनता है तो वह ऐसा करने के लिए स्वतंत्र होगा किन्तु ऐसी स्थिति में उसे बी.सी.सी.आई. में किसी भी क्षमता में कोई पद धारण करने से रोका जाएगा। [कंडिका 30-32] [483-डी-एफ-जी-एच; 484-ए-बी-डी-ई; 485-ए-एफ]

न्यायिक निर्णय संदर्भ:

ज्ञान सुधा मिश्रा, न्यायमूर्ति के अनुसार

(1876) 1 एक्स.डी. 469 —	**संदर्भित —**	**कंडिका 20**
(1883) VIII ए.सी. 354 —	**संदर्भित —**	**कंडिका 20**
(1957) ए.सी. 436 —	**संदर्भित —**	**कंडिका 20**
2001 (2) सप्ल. एस.सी.आर. 310 —	**संदर्भित —**	**कंडिका 21**
(2005) 1 एस.सी.आर. 913 —	**लागू नहीं माना गया —**	**कंडिका 24**
(1969) 3 एस.सी.आर. 203 —	**संदर्भित —**	**कंडिका28.1**
(1969) 3 ए.सी. 44 —	**संदर्भित —**	**कंडिका28.2**

दीवानी अपील क्षेत्राधिकार : सन् 2011 की दीवानी अपील सं. 3753।

मद्रास उच्च न्यायालय के दिनांक 24.03.2010 के निर्णय एवं आदेश से उत्पन्न ओ.एस.ए. सं. 227 से 229 सन् 2009 में।

साथ में

सन् 2011 की दीवानी अपीलें सं. 3754-3756।

डॉ. अभिषेक मनु सिंहवी, नलिनी चिदंबरम, रोहित भट्ट, विकास मेहता, अमित भंडारी, नरहरी सिंह अपीलकर्ता के लिए।

जी.ई. वाहनवटी, ए.जी., आर.एफ. नरिमन, पी.आर. रामन, राधा रंगास्वामी, अखिला कौशिक, ए. पूर्णवी कुरूप, अमित सिब्बल, मिहिर चटर्जी, हरि शंकर के., के. हरिशंकर, विकास सिंह जांगड़ा उत्तरदाताओं के लिए।

न्यायालय का निर्णय निम्नांकित न्यायमूर्ति द्वारा प्रतिपादित

ज्ञान सुधा मिश्रा, न्यायमूर्ति 1. अनुमति प्रदान की जाती है।

जब विश्व भर में सार्वजनिक जीवन के साथ-साथ निजी उद्यमों में हितों के टकराव को समाप्त करने का प्रयास किया जा रहा है तथा उत्तरदाता – भारत में क्रिकेट नियंत्रण बोर्ड (संक्षेप में 'बी.सी.सी.आई.') जो भारत में क्रिकेट खेल के विनियमन के संबंध में एकाधिकार की स्थिति का आनंद लेता है तथा अपनी सभी गतिविधियों में "निष्पक्षता" तथा "सद्भावना" के सिद्धांत का पालन करने के रूप में देखा जाता है ने स्वयं अपने विनियम में शामिल करके इस मूल्य तथा महत्व को मान्यता दी है कि

> "कोई प्रशासक बी.सी.सी.आई. के किसी आयोजन में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किसी व्यावसायिक रुचि नहीं रखेगा,"

तब क्या उसी में किसी न्यायपूर्ण कारण के बिना संशोधन प्रवेश करके उस प्रभाव को पतला करने वाला कोई अपवाद सृजित किया जा सकता है यह प्रश्न इन अपीलों में मूल रूप से विचारणीय है। परिणामस्वरूप यह प्रश्न भी उत्पन्न होता है कि क्या संशोधन को उसके विरुद्ध निषेधाज्ञा के आदेश द्वारा निलंबित रखने के लिए उपयुक्त था जिसके परिणामस्वरूप उत्तरदाता सं. 2 को बी.सी.सी.आई. का पदाधिकारी किसी भी क्षमता में कार्य करने से रोका जा सके क्योंकि उसकी व्यावसायिक रुचि बी.सी.सी.आई. की गतिविधियों से टकराव में आती है। इस संदर्भ में बी.सी.सी.आई. के 'प्रशासक' को बी.सी.सी.आई. विनियम में प्रवेश किए गए संशोधन को चुनौती देने के लिए वाद दायर करने का स्थान तथा विधिक योग्यता का प्रश्न भी विचारणीय हुआ जिसमें ही उसके द्वारा चुनौती को बनाए रखा जा सकता था। जबकि वाद अभी मद्रास उच्च न्यायालय में लंबित हैं निषेधाज्ञा के आवेदन खारिज कर दिए गए हैं

जिनके विरुद्ध ये अपीलें उत्पन्न हुई हैं जिनमें विवादित पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा अपनी-अपनी अभिवचनों के समर्थन में विस्तृत तर्क प्रस्तुत किए गए हैं।

2. विचार-विमर्श करने तथा पृष्ठभूमि, तथ्यों तथा परिस्थितियों के प्रकाश में जो इन अपीलों को उत्पन्न करने वाली हैं तथा मेरे विद्वान भाई पंचाल, न्यायमूर्ति के निर्णय तथा आदेश में व्यक्त दृष्टिकोण के लाभ प्राप्त करने के पश्चात् मैं उसमें व्यक्त दृष्टिकोण से सहमत होने में कठिनाई महसूस करता हूँ तथा इसलिए इन अपीलों में उठाए गए मुद्दों पर सम्मानपूर्वक असहमति दर्ज करते हुए कारण रिकॉर्ड करता हूँ। इस प्रयोजन के लिए तथा प्रस्तुत तर्कों की सापेक्षिक शक्ति तथा कमजोरियों का परीक्षण करने तथा शामिल विवाद का समग्र दृष्टिकोण प्राप्त करने के लिए मैं इन अपीलों के अंतर्गत उत्पन्न मामले की उत्पत्ति तथा पृष्ठभूमि का संबंधित करना आवश्यक समझता हूँ।

3. इन अपीलों में प्रथम उत्तरदाता जो भारत में क्रिकेट नियंत्रण बोर्ड (संक्षेप में 'बी.सी.सी.आई.') है एक समिति है जो समितियों पंजीकरण अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत है तथा जिसका अपना ज्ञापन संघ, नियम तथा विनियम हैं। इनके अतिरिक्त बी.सी.सी.आई. के पास खिलाड़ियों, टीम अधिकारियों, प्रबंधकों, अंपायरों तथा प्रशासकों के लिए विनियम भी हैं जो भारत में क्रिकेट खेल को नियंत्रित करता है तथा महत्वपूर्ण सार्वजनिक कार्य निष्पादित करता है तथा क्रिकेट खेल के विनियमन के संबंध में एकाधिकार की स्थिति का आनंद लेता है। इस प्रकार यह विशाल राजस्व अर्जित करता है तथा अपनी सभी गतिविधियों में "निष्पक्षता" तथा "सद्भावना" के सिद्धांत का पालन करने के रूप में देखा जाता है। सौभाग्य से बी.सी.सी.आई. के विनियम जो खिलाड़ियों, टीम अधिकारियों, प्रबंधकों, अंपायरों तथा प्रशासकों के लिए नियम शामिल करते हैं ने स्वयं एक खंड शामिल किया है जो खंड 6.2.4 है जिसमें कहा गया है कि

> "कोई प्रशासक बी.सी.सी.आई. के किसी आयोजन में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किसी व्यावसायिक रुचि नहीं रखेगा,"

इस प्रकार प्रशासक के बी.सी.सी.आई. के साथ हितों के टकराव को निषिद्ध किया गया है। विनियम आगे परिभाषा भी शामिल करता है जिसमें कहा गया है कि बी.सी.सी.आई. का पदाधिकारी प्रशासक है तथा बी.सी.सी.आई. का विनियम यह भी विस्तार से परिभाषित करता है कि 'प्रशासक' कौन है।

4. किन्तु विधियों तथा विनियमों को कागज पर उतारना ही 'हितों के टकराव' के विरुद्ध संघर्ष का अंत नहीं है विशेषकर सार्वजनिक सेवा में तथा निजी उद्यमों में तो और भी अधिक। अधिक उचित रूप से इस कदम को शुरुआत के रूप में देखा जाना चाहिए। यदि ये विधियाँ तथा विनियम अर्थपूर्ण होने वाले हैं तो उनका प्रभावी कार्यान्वयन तथा निष्पादन पूर्णतः महत्वपूर्ण है। 'हितों के टकराव' का प्रबंधन एक अपेक्षाकृत नया तंत्र है किन्तु ये नए तंत्रों को ईमानदारी, इच्छाशक्ति तथा समर्पण के रूप में परिपक्व होने की आवश्यकता है तथा यदि वे जीवित रहने तथा सार्वजनिक तथा निजी निकायों द्वारा शासन की संस्थागत संरचनाओं में गहराई से समाहित होने वाले हैं तो उन्हें सभी क्षेत्रों में प्रभावी होना चाहिए। इसकी अनुपस्थिति में हितों के टकराव प्रबंधन के बेहतर स्थापित कार्यक्रम भी यदि अनदेखे किए जाएँ तो शीघ्र ही मुरझा सकते हैं।

5. उपर्युक्त सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए यह प्रासंगिक हो सकता है कि मामले के आवश्यक विवरण तथा पृष्ठभूमि को अभिलिखित किया जाए जो यह संकेत देते हैं कि अपीलकर्ता – श्री मुथैया जो बी.सी.सी.आई. का भूतपूर्व अध्यक्ष है ने प्रारंभ में दिनांक 5.9.2008 तथा 19.9.2008 को बी.सी.सी.आई. के अध्यक्ष के समक्ष भूतपूर्व अध्यक्ष की क्षमता में तथा इसलिए प्रशासक के रूप में दो शिकायतें दायर कीं जिसमें द्वितीय उत्तरदाता श्री एन. श्रीनिवासन के विरुद्ध अभिकथन किया गया कि वह इंडिया सीमेंट्स लिमिटेड का अध्यक्ष तथा प्रबंध निदेशक होने के कारण इंडियन प्रीमियर लीग ('आई.पी.एल.' संक्षेप में – बी.सी.सी.आई. की एक पृथक उप-समिति इकाई) के स्वामित्व के लिए आयोजित नीलामी में भाग लेने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए थी जिसमें उसे सफल बोलीकर्ता घोषित किया

गया तथा इस प्रकार उसने चेन्नई सुपर किंग का स्वामित्व प्राप्त किया। शिकायतकर्ता/अपीलकर्ता ने इसलिए उसके विरुद्ध कार्यवाही की मांग की क्योंकि उसने बी.सी.सी.आई.-अध्यक्ष का ध्यान आकर्षित किया कि द्वितीय उत्तरदाता – श्री एन. श्रीनिवासन बी.सी.सी.आई. का पदाधिकारी होने के साथ-साथ 'इंडिया सीमेंट्स' नामक कंपनी का प्रमुख होने के कारण व्यावसायिक रुचि रखता है जो भारतीय प्रीमियर लीग (संक्षेप में 'आई.पी.एल.') टूर्नामेंट के साथ "हितों का टकराव" उत्पन्न करता है जिसके लिए बी.सी.सी.आई. द्वारा नीलामी आयोजित की गई थी जहाँ तक वह इंडिया सीमेंट्स लि. का पर्याप्त नियंत्रण रखता था जो चेन्नई सुपर किंग का सफल फ्रेंचाइजी बन गया तथा उसी समय आई.पी.एल. टूर्नामेंट की शासी परिषद में भी है जिसने उसे चेन्नई सुपर किंग के स्वामित्व के लिए बोली में भाग लेने से अयोग्य ठहराया।

6. अपीलकर्ता की शिकायत को बी.सी.सी.आई. की ओर से किसी भी प्रकार की कोई प्रतिक्रिया नहीं मिली जिसने उसे मद्रास उच्च न्यायालय में दिनांक 24.9.2008 को सी.एस. सं. 930/2008 दायर करने के लिए प्रेरित किया जिसमें वादी-अपीलकर्ता ने द्वितीय उत्तरदाता – श्री एन. श्रीनिवासन के विरुद्ध खंड 6.2.4 को प्रवर्तित करने की मांग की क्योंकि सन् 2008 में उत्तरदाता सं. 2 – श्री एन. श्रीनिवासन जो इंडिया सीमेंट्स लि. का प्रबंध निदेशक है बी.सी.सी.आई. द्वारा आयोजित आई.पी.एल. नीलामी में चेन्नई सुपर किंग के लिए सफल बोलीकर्ता बना तथा साथ ही इंडिया सीमेंट्स लि. का उपाध्यक्ष तथा प्रबंध निदेशक भी था जिसने बी.सी.सी.आई. के आयोजनों में व्यावसायिक रुचि प्राप्त की। इसलिए वादी/अपीलकर्ता ने वाद में यह मुद्दा उठाया कि उत्तरदाता सं. 2 – श्री एन. श्रीनिवासन इंडिया सीमेंट्स लि. का उपाध्यक्ष तथा प्रबंध निदेशक होने के साथ-साथ बी.सी.सी.आई. में पदाधिकारी होने के कारण विनियम 6.2.4 का उल्लंघन करता है जो स्पष्ट रूप से निर्धारित करता है कि कोई 'प्रशासक' बी.सी.सी.आई. के किसी आयोजन में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष व्यावसायिक रुचि नहीं रखेगा।

7. वादी/अपीलकर्ता – श्री मुथैया द्वारा वाद दायर करने के कुछ दिनों पश्चात् जिसमें उन्होंने खंड 6.2.4 की नीति को द्वितीय उत्तरदाता – श्री एन. श्रीनिवासन के विरुद्ध प्रवर्तित करने की मांग की बी.सी.सी.आई. ने दिनांक 27.9.2008 को बैठक की तथा खंड 6.2.4 में संशोधन प्रवेश किया जिसमें अपवाद सृजित किया गया जो निम्नानुसार पढ़ा जाता है:

> "कोई प्रशासक बी.सी.सी.आई. के किसी आयोजन में आई.पी.एल., चैंपियंस लीग तथा ट्वेंटी 20 को अपवर्जित करके प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किसी व्यावसायिक रुचि नहीं रखेगा।"

इस प्रकार एक संशोधन की एक ही चाल से जो दौड़ती गति से प्रवेश किया गया बिना किसी विचार-विमर्श के तथा बिना सदस्यों को इस एजेंडे पर 21 दिनों की सूचना दिए जो विनियम के अंतर्गत आवश्यक थी बी.सी.सी.आई. का सबसे व्यावसायिक आयोजन अर्थात् आई.पी.एल., चैंपियंस लीग तथा ट्वेंटी 20 मैच खंड 6.2.4 से अपवर्जित कर दिए गए जिसने खंड 6.2.4 के पूर्ण प्रभाव को पतला कर दिया तथा इस स्वास्थ्यप्रद खंड को मृत अक्षर बना दिया।

8. इसलिए बी.सी.सी.आई. द्वारा खंड 6.2.4 में प्रवेश किया गया संशोधन अपीलकर्ता द्वारा द्वितीय वाद सी.एस.सं.1167/2008 दायर करके चुनौती दी गई जिसमें अपीलकर्ता ने दोनों वादों में अंतरिम आवेदन भी दायर किया जिसमें बी.सी.सी.आई. को नया संशोधन प्रभावी बनाने से रोकने के लिए निषेधाज्ञा का आदेश देने की मांग की गई तथा उसे निलंबन में रखने की मांग की गई जो अपीलकर्ता के अनुसार चुपके से केवल उत्तरदाता सं.2 – श्री एन. श्रीनिवासन को लाभ पहुँचाने के लिए प्रवेश किया गया था जिसने बी.सी.सी.आई. द्वारा व्यक्तियों तथा कंपनियों के लिए आई.पी.एल. मैचों के लिए टीम के स्वामित्व तथा संचालन के लिए जारी निविदा के अनुसरण में नीलामी में भाग लिया जिसमें उत्तरदाता सं.2 – श्री एन. श्रीनिवासन जो इंडिया सीमेंट्स लिमिटेड नामक कंपनी का उपाध्यक्ष तथा प्रबंध निदेशक है आई.पी.एल. नीलामी में चेन्नई सुपर किंग के लिए सफल बोलीकर्ता बना जो अपीलकर्ता के मामले के अनुसार संशोधन से पूर्व खंड 6.2.4 के दृष्टिगत अनुमति नहीं दी जा सकती

थी। किन्तु खंड 6.2.4 द्वारा लगाए गए निषेध को दूर करने के लिए जो उत्तरदाता सं.2 को आई.पी.एल. के लिए नीलामी में भाग लेने के मार्ग में आ रहा था खंड 6.2.4 में शीघ्रता तथा अत्यंत तेजी से संशोधन प्रवेश किया गया ताकि द्वितीय उत्तरदाता – श्री एन. श्रीनिवासन बोली में भाग ले सके जिसमें वह सफल बोलीकर्ता बना तथा परिणामस्वरूप चेन्नई सुपर किंग का स्वामी हो गया यद्यपि संशोधन से पूर्व खंड 6.2.4 का निषेध उसके विरुद्ध कार्यरत था तथा संशोधन चेन्नई सुपर किंग के स्वामित्व के लिए आयोजित नीलामी के पश्चात् प्रवेश किया गया जिसके अभाव में वह बोली में भाग लेने के लिए अयोग्य होता तथा इस प्रकार अयोग्य ठहराया जाता। अपीलकर्ता ने इसलिए निषेधाज्ञा के लिए दो आवेदन दायर किए तथा प्रथम आवेदन सं. 1041/2008 में उसने बी.सी.सी.आई. को उत्तरदाता सं.2 – श्री एन. श्रीनिवासन को सामान्य निकाय बैठक में भाग लेने की अनुमति देने से अस्थायी निषेधाज्ञा की मांग की किन्तु द्वितीय आवेदन में उसने संशोधन के विरुद्ध निषेधाज्ञा की मांग की तथा अभिवचन करके उसे निलंबन में डालने की प्रार्थना की।

9. हालाँकि, वाद में तथा उच्च न्यायालय के समक्ष अपील में, और साथ ही निषेधाज्ञा आवेदन में भी, वादी/अपीलकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता के तर्क का मुख्य बल निरंतर इस प्रभाव का रहा कि बी.सी.सी.आई. द्वारा खंड 6.2.4 में किया गया संशोधन, बी.सी.सी.आई. द्वारा प्रयुक्त संशोधन शक्ति का दुरुपयोग था, क्योंकि संशोधन की शक्ति का उपयोग क्रिकेट को प्रोत्साहित करने के लिए नहीं, बल्कि दूसरे उत्तरदाता के हित को प्रोत्साहित करने के लिए किया गया था।परंतु, जिनके समक्ष वाद में निषेधाज्ञा के आवेदन प्रस्तुत किए गए थे, उन विद्वान एकल न्यायाधीश ने अंतरिम निषेधाज्ञा के आवेदनों को यह कहते हुए खारिज करना उचित समझा कि उन्होंने बी.सी.सी.आई. की तुलना निजी क्लबों से की और यह अभिनिर्धारित किया कि कोई बाहरी व्यक्ति समाज के विनियमों पर प्रश्न नहीं उठा सकता तथा न्यायालय भी समाज के आंतरिक प्रबंधन में हस्तक्षेप नहीं कर सकते। विद्वान एकल न्यायाधीश ने, तथापि, दोनो वादों में मुख्य प्रश्न पर, अर्थात संशोधित खंड

6.2.4 के संदर्भ में तथा खंड 6.2.4 में किए गए संशोधन के प्रभाव पर, कोई विचार नहीं किया, जिसके कारण वादी-याचिकाकर्ता ने निषेधाज्ञा की प्रार्थना करने वाले आवेदनों की अस्वीकृति के विरुद्ध पीठीय खंडपीठ के समक्ष अपील दायर की।परंतु, अपील में भी, खंडपीठ ने अपीलों को खारिज कर दिया, जिसके विरुद्ध ये विशेष अनुमति द्वारा अपीलें दायर की गईं और जिन पर विस्तार से सुनवाई की गई।

10. विशेष अनुमति द्वारा इस अपील में विचारार्थ प्रथम और प्रधान प्रश्न यह है कि क्या यहाँ वादी/अपीलकर्ता को बी.सी.सी.आई. द्वारा विनियमों के खंड 6.2.4 में किए गए संशोधन को चुनौती देते हुए दीवानी वाद दायर करने हेतु कोई अधिकारिता प्राप्त है, जबकि वह मात्र बी.सी.सी.आई. का भूतपूर्व अध्यक्ष है, और क्या यह तथ्य उसे प्रशासक के रूप में कोई ऐसा अधिकार प्रदान करता है जिससे वह बी.सी.सी.आई. द्वारा किए गए उस संशोधन को चुनौती दे सके, जो बी.सी.सी.आई. की गतिविधियों में प्रशासक के वाणिज्यिक हित पर लगाए गए प्रतिबंध को शिथिल करता है और इस प्रकार हितों का टकराव उत्पन्न करता है; और यदि इन प्रश्नों के उत्तर स्वीकारात्मक माने जाएँ, तो क्या बी.सी.सी.आई. द्वारा खंड 6.2.4 में किया गया संशोधन इस आधार पर निषेधाज्ञा योग्य है कि उसे स्थगन/निलंबन में रखा जाए, क्योंकि वह स्पष्ट रूप से बी.सी.सी.आई. और उत्तरदाता संख्या 2 के बीच हितों का टकराव उत्पन्न करता है, चूँकि वह बी.सी.सी.आई. के पदाधिकारी/प्रशासक के रूप में कार्य करते हुए अपने वाणिज्यिक हित को प्रोत्साहित करने में संलग्न रहा, और साथ ही आई.पी.एल. की नीलामी में भाग लेकर सफल बोलीदाता बना तथा चेन्नई सुपर किंग का स्वामी भी हुआ। इसे और स्पष्ट करने के लिए यह पुनः दोहराया जाना आवश्यक है कि यदि याचिकाकर्ता/अपीलकर्ता को बी.सी.सी.आई. के विरुद्ध वाद दायर करने की क्षमता या अधिकारिता प्राप्त मानी जाए, तो क्या उसके द्वारा दायर वाद को इस आधार पर विचारणीय माना जा सकता है कि आगे इस प्रश्न में प्रवेश किया जाए कि खंड 6.2.4 में किया गया कथित संशोधन बी.सी.सी.आई. के हितों के साथ किसी प्रकार का हितों का टकराव उत्पन्न

करता है या नहीं, क्योंकि ऐसी स्थिति में वह उत्तरदाता संख्या 2 को बी.सी.सी.आई. के पदाधिकारी के रूप में कार्य करते हुए क्षेत्र में बने रहने की अनुमति देगा और इस प्रकार उसे बी.सी.सी.आई. के सभी नीतिगत निर्णयों तथा विचार-विमर्श में भाग लेने की सुविधा प्राप्त होगी, जबकि वह एक साथ अपनी कंपनी इंडिया सीमेंट्स लि. के उपाध्यक्ष/प्रबंध निदेशक के रूप में भी कार्यरत रहेगा और साथ ही आई.पी.एल. की नीलामी में सफल बोलीदाता के रूप में चेन्नई सुपर किंग का स्वामित्व भी बनाए रखेगा।

11. प्रारंभिक प्रश्न जिस पर मामले का संपूर्ण आधार निर्भर है तथा जिसका प्रभाव पूरे मामले को खड़ा रखने अथवा ढहा देने का होगा वह यह है कि क्या वादी/अपीलकर्ता को मद्रास उच्च न्यायालय में दीवानी वाद दायर करने का स्थान है ताकि बी.सी.सी.आई. द्वारा खंड 6.2.4 के अंतर्गत प्रवेश किए गए संशोधन को चुनौती दी जा सके। इस संदर्भ में बी.सी.सी.आई. विनियमों में 'प्रशासक' शब्द की परिभाषा को अभिलिखित करना अत्यंत प्रासंगिक है। खंड 1(एन) 'प्रशासक' शब्द को निम्नानुसार परिभाषित करता है:–

> "प्रशासक: प्रशासक का अर्थ है तथा इसमें शामिल हैं भारत में क्रिकेट नियंत्रण बोर्ड ('बोर्ड') के वर्तमान तथा भूतपूर्व अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, मानद सचिव, मानद कोषाध्यक्ष, मानद सह-सचिव, बी.सी.सी.आई. से संबद्ध सदस्यों के भूतपूर्व तथा वर्तमान अध्यक्ष तथा सचिव तथा बोर्ड के ज्ञापन तथा नियम एवं विनियम में परिभाषित बोर्ड द्वारा नियुक्त किसी भी उप-समिति में नामित कोई व्यक्ति।"

12. वादी/अपीलकर्ता निर्विवाद रूप से बी.सी.सी.आई. का भूतपूर्व अध्यक्ष है तथा इसलिए 'प्रशासक' की अस्पष्ट परिभाषा के दृष्टिगत जो भूतपूर्व तथा वर्तमान अध्यक्ष तथा सचिव तथा बी.सी.सी.आई. से संबद्ध सदस्यों को शामिल करती है यह स्वीकार करना कठिन है कि याचिकाकर्ता/अपीलकर्ता को बी.सी.सी.आई. द्वारा प्रवेश किए गए संशोधन को चुनौती देने वाले दीवानी वाद दायर करने का स्थान नहीं था। मुझे विद्वान भाई पंचाल, न्यायमूर्ति

द्वारा लिया गया दृष्टिकोण स्वीकृत करने में कठिनाई है कि केवल यदि भूतपूर्व अध्यक्ष बी.सी.सी.आई. की किसी उप-समिति में नामित किया जाता है तो ही वह 'प्रशासक' माना जाएगा अन्यथा नहीं क्योंकि यह बी.सी.सी.आई. 2008 के विनियमों में दी गई 'प्रशासक' की स्पष्ट परिभाषा के स्पष्ट रूप से विरोधी है। विनियम का खंड 32 निश्चय ही कदाचार से निपटता है तथा किसी भी पक्ष से प्राप्त शिकायत अथवा प्रकाशित या प्रसारित किसी प्रतिवेदन पर अथवा अपने स्वयं के प्रस्ताव पर अनुशासनहीनता अथवा कदाचार के विषय में आवश्यक प्रक्रिया से निपटता है। विनियम का खंड 32 (वी) सदस्य, सहयोगी सदस्य, प्रशासक, खिलाड़ी, अंपायर, टीम अधिकारी, रेफरी अथवा चयनकर्ता जैसा भी मामला हो के निष्कासन के संबंध में प्रावधान भी करता है तथा यदि उनमें से कोई दोषी पाया जाता है तथा बोर्ड द्वारा निष्कासित किया जाता है तो वह भविष्य में किसी पद अथवा कार्यालय को धारण करने अथवा बोर्ड की किसी समिति में शामिल होने अथवा बोर्ड के किसी सदस्य अथवा सहयोगी सदस्य में प्रवेश पाने का हकदार नहीं होगा। खंड 32 इस प्रकार स्पष्ट रूप से बी.सी.सी.आई. के पदाधिकारियों सहित यहां पूर्व में उल्लिखित उसके सभी घटकों के कदाचार तथा उनसे निपटने की प्रक्रिया से निपटता है तथा इस प्रयोजन के लिए यह यह भी निर्धारित करता है कि कदाचार से निपटने वाली उप-समिति के सदस्य के रूप में सक्षम व्यक्ति कौन होंगे। किन्तु यह मानना कि विनियम के खंड 1 (एन) में दी गई 'प्रशासक' की परिभाषा के बावजूद जिसमें बी.सी.सी.आई. के अध्यक्ष तथा भूतपूर्व अध्यक्ष स्पष्ट रूप से शामिल हैं वही प्रशासक नहीं माना जाएगा जब तक कि वह अनुशासन समिति की उप-समिति का सदस्य न हो जो खंड 32 के अंतर्गत परिकल्पित किसी पदाधिकारी सहित उसके सभी घटकों के कदाचार से निपटने के लिए गठित है यह बहुत दूर की व्याख्या होगी ताकि यह माना जाए कि जब तक प्रशासक विनियम के खंड 32 के अंतर्गत अनुशासन समिति गठित करने के प्रयोजन के लिए उप-समिति में नियुक्त न हो वह विनियम के खंड 1(एन) के अर्थ में 'प्रशासक' नहीं माना जा सकता तथा यह उसे बी.सी.सी.आई. के विरुद्ध कानून में कार्रवाई

बनाए रखने का कोई विधिक अधिकार नहीं देता यद्यपि मनमाने संशोधन को चुनौती देने के लिए यह स्वीकार करना तथा मानना कठिन है।

13. इसके विपरीत मुझे अपीलकर्ता के अधिवक्ता के अभिकथन में पर्याप्त बल तथा सार मिलता है कि वाद अपीलकर्ता द्वारा बी.सी.सी.आई. के भूतपूर्व अध्यक्ष की क्षमता में दायर किए गए थे क्योंकि वह विनियम के खंड 1(एन) में उल्लिखित उक्त परिभाषा के अर्थ में प्रशासक था। इस प्रकार वह अपनी व्यक्तिगत क्षमता में वाद दायर करने के लिए सक्षम था क्योंकि विनियम का खंड 1(एन) प्रशासक की परिभाषा की स्पष्ट अभिव्यक्ति को नजरअंदाज करके विनियम के खंड 32 की सहायता से व्याख्या करके उसे निष्प्रभावी बनाने की अनुमति नहीं दी जा सकती जो 'भूतपूर्व अध्यक्ष' की परिभाषा तथा अर्थ से दूर से भी संबंधित नहीं है किन्तु केवल कदाचार के परिणाम तथा कथित कदाचार के मामलों से निपटने की प्रक्रिया से संबंधित एक पृथक तथा विशिष्ट प्रावधान है जो उन मामलों से निपटने की कल्पना नहीं करता जिसमें बी.सी.सी.आई. के विनियम में किसी संशोधन की वैधता तथा प्रभावशीलता चुनौती में है।

14. वर्तमान मामले में अधिस्थिति के प्रश्न से निपटते हुए कि क्या याचिकाकर्ता/अपीलकर्ता संशोधन को चुनौती देने वाले वाद दायर करने का विधिक रूप से हकदार था अथवा नहीं मेरे मत में विनियम का खंड 1(एन) जो 'प्रशासक' की परिभाषा में 'भूतपूर्व अध्यक्ष' को शामिल करता है वह एकमात्र प्रासंगिक प्रावधान है तथा उसके प्रभाव को पतला करने के लिए विनियम के खंड 32 पर भरोसा नहीं किया जा सकता क्योंकि वह बी.सी.सी.आई. के पदाधिकारियों तथा उसके अन्य घटकों जैसे खिलाड़ी, अंपायर आदि के कदाचार के मामलों से निपटने की प्रक्रिया से विशेष रूप से निपटता है। मेरे मत में यह व्याख्या इस आधार पर कि वही 'प्रशासक' अभिव्यक्ति की उद्देश्यपूर्ण व्याख्या की ओर ले जाएगी न तो शाब्दिक है न उद्देश्यपूर्ण। जब खंड 1(एन) स्पष्ट तथा स्पष्ट रूप से 'प्रशासक' शब्द को परिभाषित करता है तथा स्पष्ट रूप से घोषित करता है कि 'प्रशासक' का अर्थ है

तथा इसमें शामिल हैं बोर्ड के वर्तमान तथा भूतपूर्व अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, मानद सचिव, मानद कोषाध्यक्ष, मानद सह-सचिव तथा बी.सी.सी.आई. से संबद्ध सदस्यों के भूतपूर्व तथा वर्तमान अध्यक्ष तथा सचिव इतना कि बोर्ड से संबद्ध सदस्य अथवा सहयोगी सदस्य का प्रतिनिधि तथा बोर्ड द्वारा नियुक्त किसी भी उप-समिति से जुड़ा कोई व्यक्ति बी.सी.सी.आई. के विनियम में परिभाषित बोर्ड द्वारा नियुक्त किसी भी उप-समिति में शामिल किया गया है प्रशासक की परिभाषा में यह मानना कठिन होगा कि ऐसा प्रशासक भी कदाचार से निपटने के लिए गठित उप-समिति का सदस्य होना चाहिए ताकि विनियम में प्रवेश किए गए संशोधन को चुनौती दे सके यह पूरी तरह भूल जाते हुए कि बी.सी.सी.आई. के संशोधन को चुनौती देने की शक्ति खिलाड़ियों, अंपायरों अथवा प्रशासक के विरुद्ध कदाचार के मामलों से निपटने से पूर्णतः भिन्न है।

15. नियम की सादा तथा शाब्दिक व्याख्या स्पष्ट रूप से संकेत देती है कि भूतपूर्व अध्यक्ष भी 'प्रशासक' के अर्थ में असंदिग्ध रूप से शामिल किए गए हैं तथा जबकि प्रशासक अनुशासन समिति के लिए उप-समिति का सदस्य भी हो सकता है यह इस प्रकार व्याख्या नहीं की जा सकती कि भूतपूर्व अध्यक्ष प्रशासक की परिभाषा से बाहर खड़ा है जब तक कि वह अनुशासनिक कार्यवाही के लिए उप-समिति का सदस्य न हो। मेरे मत में यह उद्देश्यपूर्ण व्याख्या देने के लिए ऐसा होगा क्योंकि इससे कोई उद्देश्य अनुमानित नहीं किया जा सकता इसके विपरीत उद्देश्य स्पष्ट रूप से लिखा है कि यह उत्तरदाता सं. 2 को विनियम के खंड 6.2.4 द्वारा लगाए गए निषेध से छूट प्रदान करने के बराबर है जो निर्धारित करता है कि "प्रशासक बी.सी.सी.आई. के किसी आयोजन में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष व्यावसायिक रुचि नहीं रखेगा"। अत्यधिक सम्मान के साथ इसे उद्देश्यपूर्ण व्याख्या मानना विनियम के खंड 1(एन) में दी गई प्रशासक की परिभाषा की स्पष्ट अभिव्यक्ति को अनदेखा करने के बराबर होगा जो निर्धारित करता है कि प्रशासक में न केवल बी.सी.सी.आई. के वर्तमान अध्यक्ष

शामिल होंगे बल्कि भूतपूर्व अध्यक्ष भी इतना कि सदस्य अथवा सहयोगी सदस्य का प्रतिनिधि भी प्रशासक की परिभाषा में शामिल किया गया है।

16. यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है तथा दूर से भी अस्पष्ट नहीं है कि खंड 32 का उद्देश्य तथा प्रयोजन केवल किसी खिलाड़ी, अंपायर, प्रशासक आदि के कदाचार से निपटने की प्रक्रिया निर्धारित करना है तथा यह विनियम में संशोधन की प्रक्रिया, उद्देश्य अथवा प्रभावशीलता से दूर से भी संबंधित नहीं है न ही विनियम में संशोधन प्रवेश करने के तरीके तथा प्रणाली से ताकि यह अनुमान लगाया जाए कि जब तक कोई प्रशासक चाहे भूतपूर्व अथवा वर्तमान अनुशासन समिति अथवा उप-समिति का सदस्य न हो वह विनियम में संशोधन के माध्यम से बी.सी.सी.आई. द्वारा प्रवेश की गई किसी अवैधता के विरुद्ध कार्रवाई आरंभ करने के लिए सक्षम नहीं माना जा सकता या अन्यथा यह स्पष्ट रूप से तर्क है जो संदर्भ से बाहर है तथा प्रशासक के विनियम में प्रवेश किए गए संशोधन को चुनौती देने के स्थान के प्रश्न से पूर्णतः कोई प्रासंगिकता नहीं रखता।

17. यह कहना कि भूतपूर्व अध्यक्ष का अर्थ केवल वे भूतपूर्व अध्यक्ष हैं जो अनुशासनिक कार्यवाही की उप-समिति के सदस्य हैं मेरे मत में नियम के स्पष्ट अर्थ तथा अभिप्राय से विचलन करने के बराबर है ताकि भूतपूर्व अध्यक्ष को बी.सी.सी.आई. के मामलों से बाहर किया जाए जो विनियम की स्पष्ट अभिव्यक्ति के विरुद्ध है तथा इसे नियम की सही अथवा उद्देश्यपूर्ण व्याख्या नहीं माना जा सकता क्योंकि इससे कोई उद्देश्य अथवा प्रशंसनीय वस्तु को प्रभावी नहीं किया जाता जो न्याय, निष्पक्षता तथा बी.सी.सी.आई. के हित की सेवा करने वाली मानी जा सके। इसके विपरीत, यह बी.सी.सी.आई. के हितों की रक्षा में बाधा अथवा रुकावट उत्पन्न करता है तथा दुर्व्यवहार को रोकने और न्याय एवं निष्पक्षता सुनिश्चित करने में भी बाधक सिद्ध होता है।

18. हमें इस चरण पर यह भी ध्यान में रखना है कि वर्तमान मामला किसी सदस्य के विरुद्ध किसी अनुशासनिक कार्यवाही से दूर से भी संबंधित नहीं है क्योंकि वाद में विशिष्ट

मुद्दा यह है कि क्या बी.सी.सी.आई. खंड 6.2.4 में संशोधन प्रवेश कर सकता था यह तथ्य नजरअंदाज करते हुए तथा अनदेखा करते हुए कि बी.सी.सी.आई. का वर्तमान पदाधिकारी आई.पी.एल. अथवा ट्वेंटी 20 मैचों के स्वामित्व के लिए नीलामी में भाग लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती क्योंकि यह बी.सी.सी.आई. के हित से टकराएगा तथा संघर्ष करेगा।

19. हमें स्वयं को व्याख्या के अच्छी तरह स्थापित सिद्धांत की स्मृति करानी है कि जब विधि में भाषा सादा है तथा एक अर्थ स्वीकार करती है तो व्याख्या का कार्य उत्पन्न होने के लिए कठिन कहा जा सकता है जैसा वर्तमान मामले में जहां 'प्रशासक' की परिभाषा बी.सी.सी.आई. के विनियम में स्पष्ट रूप से दी गई है। किन्तु भूतपूर्व अध्यक्ष को तथा बी.सी.सी.आई. की कार्रवाई को चुनौती देने की उसकी योग्यता को बी.सी.सी.आई. द्वारा प्रवेश किए गए शीघ्र तथा जल्दबाजी वाले संशोधन पर प्रश्न उठाने से बाहर करने के लिए जो उत्तरदाता सं.2 को चेन्नई सुपर किंग के स्वामित्व के लिए बोली प्रक्रिया में भाग लेने में सहायता देने के लिए तथा फिर 'प्रशासक' की परिभाषा की व्याख्या इस प्रकार करने के लिए कि वह वाद दायर करने के लिए सक्षम नहीं था 'प्रशासक' अभिव्यक्ति को उद्देश्यपूर्ण तथा अर्थपूर्ण व्याख्या को प्रभावी बनाने के बराबर कठिन माना जा सकता है क्योंकि कुछ न्यायपूर्ण कारण की सेवा करने का उद्देश्य अथवा वस्तु पूर्णतः अनुपस्थित है।

20. यदि हम न्यायिक पूर्व निर्णयों के भूलभुलैया वाले अभिलेखागार में खोज करें तो हम *द अटॉर्नी जनरल* बनाम *द म्यूचुअल टोंटाइन वेस्ट मिन्स्टर चैंबर्स एसोसिएशन, लिमिटेड* (1876) 1 एक्स.डी. 469 तथा *चार्ल्स ब्रैडलॉफ बनाम हेनरी लुईस क्लार्क* (1883) VIII ए.सी. 354 के मामले पर ध्यान दे सकते हैं जिसमें अभिनिर्धारित किया गया था कि "यदि विधि में निहित भाषा को संशोधित, परिवर्तित अथवा स्पष्ट करने के लिए कुछ भी नहीं है तो उसे शब्दों तथा वाक्यों के सामान्य, प्राकृतिक अर्थ में व्याख्या किया जाना चाहिए"। निर्माण के प्रश्न से निपटने का सुरक्षित तथा अधिक सही मार्ग शब्दों को स्वयं लेना है तथा यदि संभव हो तो उनके अर्थ को बिना किसी प्रथम उदाहरण के मामलों के संदर्भ के बिना समझना है।

प्रावधान की शाब्दिक निर्माण को उसके प्रभाव अथवा परिणाम पर विचार किए बिना प्रतिबंधात्मक निर्माण मानने की अनुमति नहीं दी जा सकती क्योंकि वे अक्सर शब्दों के वास्तविक अर्थ को संकेत देते हैं। यह निश्चय ही सत्य है कि यदि शब्दों का शाब्दिक अनुप्रयोग विधानमंडल की स्पष्ट मंशा को विफल कर देता है तथा पूर्णतः अयुक्तियुक्त परिणाम उत्पन्न करता है तो हमें कुछ हिंसा करनी चाहिए तथा इस प्रकार वह स्पष्ट मंशा प्राप्त करनी चाहिए तथा युक्तियुक्त निर्माण उत्पन्न करना चाहिए। किन्तु असुविधा तथा अयुक्तियुक्तता का प्रश्न विशिष्ट घटनाओं के प्रकाश में देखा जाना चाहिए जैसा कि *अटॉर्नी जनरल बनाम प्रिंस अर्नेस्ट ऑगस्टस ऑफ हनोवर* (1957) ए.सी. 436 के मामले में अभिनिर्धारित किया गया था जिसमें प्रश्न यह था कि क्या विधि में प्रयुक्त शब्द अधिक सीमित निर्माण के योग्य हैं। यदि नहीं तो व्याख्या के अच्छी तरह स्थापित नियम निर्धारित करते हैं कि हमें उन्हें जैसा वे हैं वैसा ही लागू करना चाहिए यद्यपि परिणाम कितना भी अयुक्तियुक्त अथवा अन्यायपूर्ण हो तथा हम कितना भी मजबूती से संदेह करें कि यह विधि निर्माता की वास्तविक मंशा नहीं थी।

21. यह भी अनदेखा करना कठिन होगा कि अच्छी तरह स्थापित स्थिति यह है कि यदि कोई विशेष निर्माण असामान्यता उत्पन्न नहीं करता तथा प्रयुक्त शब्द सादा हैं तो असुविधा के संबंध में तर्क का थोड़ा भी भार है। विधियों की निर्माण का यह भी समान रूप से अच्छी तरह स्थापित नियम है कि प्रथम उदाहरण में शब्दों का व्याकरणिक अर्थ अपनाया जाना चाहिए तथा विधि के शब्दों को प्रथम दृष्ट्या उनके सामान्य अर्थ में दिया जाना चाहिए। जहां विधि की व्याकरणिक निर्माण स्पष्ट तथा प्रकट है वह निर्माण प्रबल होना चाहिए जब तक कि विपरीत कोई प्रबल तथा स्पष्ट कारण न हो किन्तु जब शब्दों में कोई अस्पष्टता नहीं है तो व्याख्या के लिए कोई स्थान नहीं है। यदि विधि की भाषा स्पष्ट तथा असंदिग्ध है तो न्यायालय को उसे प्रभावी बनाना चाहिए तथा विधानमंडल/विधि निर्माता की वास्तविक अथवा कथित मंशा को पूरा करने के लिए उसके संचालन को विस्तारित करने का

कोई अधिकार नहीं है। जब भाषा न केवल सादा है बल्कि केवल एक अर्थ स्वीकार करती है तो व्याख्या का कार्य उत्पन्न होने के लिए कठिन कहा जा सकता है। विधानमंडल (विधि निर्माता) द्वारा शामिल नहीं किया गया वही न्यायालय द्वारा उद्देश्यपूर्ण व्याख्या के सिद्धांत से नहीं किया जा सकता। यह दृष्टिकोण इस न्यायालय द्वारा भी *डेंटल काउंसिल ऑफ इंडिया तथा अन्य बनाम हरि प्रकाश तथा अन्य* (2001) 8 एस.सी.सी. 61 के मामले में व्यक्त किया गया था जिसमें अभिनिर्धारित किया गया कि न्यायालय स्पष्ट (प्रावधान) तथा विधानमंडल के उद्देश्य तथा अभिप्राय को संदर्भ से प्रकट होने वाले को अनदेखा नहीं कर सकता तथा इस प्रकार व्याख्या तथा निर्माण नहीं कर सकता कि उसके अनुप्रयोग का दायरा बढ़ा दिया जाए अर्थात् निहितार्थ से अर्थ जोड़कर जो आवश्यक रूप से उत्पन्न नहीं होते।

22. उपर्युक्त व्याख्या के स्वास्थ्यप्रद सिद्धांतों पर विचार करते हुए मैं स्पष्ट रूप से इस दृष्टिकोण पर हूँ कि 'प्रशासक' शब्द की परिभाषा भूतपूर्व अध्यक्ष को प्रशासक के अर्थ से बाहर नहीं करती ताकि यह माना जाए कि प्रशासक द्वारा दीवानी वाद दायर करके तथा बी.सी.सी.आई. द्वारा खंड 6.2.4 में प्रवेश किए गए संशोधन पर प्रश्न उठाकर की गई कार्रवाई अपीलकर्ता के अधि स्थिति अथवा योग्यता के आधार पर मनोरंजन करने के लिए उपयुक्त नहीं थी। मैं इसलिए इस दृष्टिकोण से सहमत होने तथा स्वीकार करने में कठिनाई महसूस करता हूँ कि केवल यदि भूतपूर्व अध्यक्ष बी.सी.सी.आई. की अनुशासन समिति की किसी उप-समिति में नामित किया जाता है तो ही वह प्रशासक माना जाएगा अन्यथा नहीं यह स्वीकार करना कठिन प्रस्ताव है।

23. मुझे अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के अभिकथन में भी पर्याप्त बल तथा सार मिलता है कि चूँकि बी.सी.सी.आई. महत्वपूर्ण सार्वजनिक कार्य करता है जैसे भारतीय टीम का चयन तथा खिलाड़ियों पर नियंत्रण तथा महत्वपूर्ण सार्वजनिक कार्य निष्पादित करना है इसलिए यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह मनमाने, व्यर्थ तथा मनोवैज्ञानिक रूप से कार्य करे ताकि यह माना जाए कि अपीलकर्ता द्वारा दायर दो वाद बनाए रखने योग्य नहीं हैं

जो यद्यपि निर्विवाद रूप से बी.सी.सी.आई. का भूतपूर्व अध्यक्ष है तथा इसलिए प्रशासक है किन्तु दीवानी वाद दायर करने तथा संशोधन के प्रभाव को निलंबित करने के लिए निषेधाज्ञा का आदेश प्राप्त करने का भी अधि स्थिति नहीं रखता इस अभिवचन पर कि चूँकि वह उप-समिति का सदस्य नहीं था वह बी.सी.सी.आई. विनियम में प्रवेश किए गए संशोधन को चुनौती देने के लिए सक्षम नहीं था।

24. किन्तु उत्तरदाताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विस्तृत तर्क प्रस्तुत किए गए हैं कि यदि बोर्ड द्वारा किसी मौलिक अधिकार का उल्लंघन भी माना जाए तो वह अनुच्छेद 12 के प्रयोजन के लिए बोर्ड को 'राज्य' नहीं बनाता। यह अभिवचन यद्यपि *मैसर्स जी टेली फिल्म्स लि. तथा अन्य बनाम यूनियन ऑफ इंडिया तथा अन्य* (2005) 1 एस.सी.आर. 913 के निर्णय के अनुपात के दृष्टिगत सही हो सकता है किन्तु उत्तरदाताओं के अधिवक्ता द्वारा यह छूट दिया गया है कि अपीलकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष संविधान के अनुच्छेद 226 अथवा अनुच्छेद 32 के अंतर्गत उच्च न्यायालय के रिट क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आवेदन नहीं किया था ताकि उत्तरदाताओं को यह अभिकथन करने का आधार मिले कि चूँकि बोर्ड संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ में 'राज्य' नहीं है इसलिए विनियम के अंतर्गत प्रशासक भूतपूर्व अध्यक्ष की क्षमता में भी दीवानी वाद दायर नहीं कर सकता तथा इस प्रकार 'प्रशासक' के रूप में बी.सी.सी.आई. के विनियम में असंवैधानिक संशोधन को चुनौती नहीं दे सकता। उत्तरदाताओं के अधिवक्ता ने इस प्रश्न से निपटते हुए यह अनदेखा किया कि अपीलकर्ता ने अनुच्छेद 226 तथा 227 के अंतर्गत अपने मौलिक अधिकार के प्रवर्तन के लिए उच्च न्यायालय से संपर्क नहीं किया था न ही अनुच्छेद 32 के अंतर्गत इस न्यायालय में मौलिक अधिकार के उल्लंघन का आरोप लगाकर रिट याचिका दायर की थी किन्तु बी.सी.सी.आई. के भूतपूर्व अध्यक्ष की क्षमता में दीवानी उपचार का सहारा लेकर दीवानी वाद दायर करके उच्च न्यायालय से संपर्क किया था केवल संशोधन को निलंबित करने के लिए निषेधाज्ञा की मांग करके क्योंकि वह बी.सी.सी.आई. के हित में नहीं था चूँकि उसने उत्तरदाता सं.2 के

बी.सी.सी.आई. के आयोजनों के साथ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष व्यावसायिक हित को उत्पन्न किया था तथा विनियम 6.2.4 के अंतर्गत निषिद्ध था जिसे संशोधन प्रवेश करके पतला करने का प्रयास किया गया था।

25. यह पुनरावृत्त किया जा सकता है कि यह विशेष अनुमति द्वारा अपील संविधान के अनुच्छेद 32 के अंतर्गत याचिका नहीं है किन्तु संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत अपील है जो दो नियमित दीवानी वादों में निषेधाज्ञा प्रदान करने से इंकार करने वाले आदेश से उत्पन्न हुई है। मैं इसलिए उत्तरदाताओं के अधिवक्ता के अभिकथन को तथा मेरे भाई पंचाल, न्यायमूर्ति द्वारा स्वीकृत दृष्टिकोण को स्वीकार करने में कठिनाई महसूस करता हूँ कि चूँकि बी.सी.सी.आई. को राज्य का उपकरण नहीं माना जा सकता इसलिए अपीलकर्ता द्वारा दायर दो वाद बनाए रखने योग्य नहीं हैं। यह निर्णय करने के लिए कि वादी को दीवानी वाद दायर करने का अधिकार है अथवा नहीं वादी का अधि स्थिति अथवा योग्यता ही स्थापित की जानी है तथा यह प्रश्न नहीं कि बोर्ड संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ में राज्य है जो अनुच्छेद 226 और/अथवा 227 तथा अनुच्छेद 32 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार आह्वान करने की शर्त है किन्तु निश्चय ही दीवानी वाद अथवा निषेधाज्ञा आवेदन दायर करने के लिए नहीं। शायद *जी टेली फिल्म्स* (उपर्युक्त) के संविधान पीठ के निर्णय के दृष्टिगत अपीलकर्ता को प्रशासक की क्षमता में दीवानी वाद दायर करना पड़ा था कि उसने उच्च न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 226 तथा 227 के अंतर्गत रिट याचिका दायर नहीं की थी न ही इस न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 32 के अंतर्गत रिट याचिका दायर की थी ताकि यह माना जाए कि उसे दीवानी वाद दायर करने का भी अधि स्थिति नहीं था यद्यपि वह स्पष्ट रूप से 'प्रशासक' की परिभाषा के अर्थ में आता है। इसलिए *जी टेली फिल्म्स* (उपर्युक्त) के निर्णय का अनुपात इस अपील में शामिल मुद्दे से पूर्णतः लागू नहीं तथा अप्रासंगिक है जो दीवानी वादों तथा निषेधाज्ञाओं से उत्पन्न हुई है तथा अधि स्थिति का प्रश्न कि कौन वाद दायर कर सकता है अथवा अपीलकर्ता द्वारा दायर वाद बनाए रखने योग्य है अथवा नहीं वाद की बनाए रखने

योग्यता तथा निषेधाज्ञा आवेदनों के प्रयोजन के लिए एकमात्र प्रासंगिक मुद्दा है। जब दीवानी वाद दायर किया जाता है तो यह प्रश्न कि कोई पक्ष राज्य के उपकरण के दायरे में आता है अथवा नहीं बिल्कुल उत्पन्न नहीं होता तथा पूर्ण तथा एकमात्र विचार यह होगा कि क्या वादी को दीवानी वाद दायर करने का कारण कार्रवाई थी, क्या वह वाद दायर करने के लिए सक्षम है तथा क्या वाद उसके द्वारा बनाए रखने योग्य है। यदि दीवानी वाद कारण कार्रवाई के अस्तित्व के आधार पर बनाए रखने योग्य है तो उस पर संवैधानिक मुद्दा उठाकर यह कहकर आक्रमण करने का कोई स्थान नहीं है कि वाद बनाए रखने योग्य नहीं है क्योंकि बी.सी.सी.आई. राज्य का उपकरण नहीं है क्योंकि उक्त प्रश्न दीवानी प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के अंतर्गत दीवानी वाद के निर्णय के लिए प्रासंगिक नहीं है न ही दीवानी न्यायालय संवैधानिक न्यायालय हैं जो उस प्रश्न में प्रवेश करें।

26. वास्तव में यह सहायता के माध्यम से प्रासंगिक हो सकता है कि सर्वोच्च न्यायालय के दिनांक 31.1.2011 के एक नवीनतम आदेश का उल्लेख किया जाए जो इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) सं. 10107 सन् 2010 में पारित किया गया जिसमें इस न्यायालय ने केरल उच्च न्यायालय के निर्णय तथा आदेश को बनाए रखा जिसके द्वारा अभिनिर्धारित किया गया कि केरल क्रिकेट एसोसिएशन के निर्वाचित मानद पदाधिकारी तथा अन्य जैसे खिलाड़ी, कोच, प्रबंधक, विभिन्न समितियों के सदस्य आदि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1988 की धारा 2 (सी) के अर्थ में लोक सेवक हैं तथा केरल उच्च न्यायालय ने केरल के विशेष न्यायालय के निर्णय को पलट दिया था जिसमें अभिनिर्धारित किया गया था कि वे लोक सेवक नहीं हैं। इसे थोड़ा विस्तार देते हुए कहा जा सकता है कि विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) सं. 10107 सन् 2010 *टी.सी. मैथ्यू बनाम के. बालाजी अयंगर तथा अन्य शीर्षक वाली* केरल उच्च न्यायालय के निर्णय को चुनौती देते हुए दायर की गई थी जिसमें उक्त विशेष अनुमति याचिका में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष उठाया गया विधि का पर्याप्त प्रश्न यह था कि क्या केरल क्रिकेट एसोसिएशन के

निर्वाचित पदाधिकारियों पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत अभियोजन चलाया जा सकता है जिसमें भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1) (सी) तथा (डी) के साथ पठित धारा 13(2) के अंतर्गत अपराधों का आरोप लगाया गया है तथा क्या भारतीय दंड संहिता की धारा 409, 420, 468, 471, 427 (ए) तथा 201 केरल क्रिकेट एसोसिएशन के निर्वाचित मानद पदाधिकारियों अर्थात् मानद, विभिन्न समितियों के सदस्यों, खिलाड़ियों, कोचों, प्रबंधक, लड़कों की टीम के सदस्यों आदि के विरुद्ध सही रूप से आरंभ की गई थी। इस न्यायालय की पीठ ने दिनांक 31.01.2011 के आदेश द्वारा विशेष अनुमति याचिका को प्रारंभ में ही खारिज करने में प्रसन्नता व्यक्त की तथा इस प्रकार केरल उच्च न्यायालय के निर्णय तथा आदेश को बनाए रखा जिसमें अभिनिर्धारित किया गया था कि केरल क्रिकेट एसोसिएशन के उपर्युक्त निर्वाचित पदाधिकारियों पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत अभियोजन चलाया जा सकता है तथा इसलिए अभियोजन सही रूप से आरंभ किया गया था। यह निर्णय यद्यपि इस बिंदु पर नहीं है कि क्या भूतपूर्व अध्यक्ष प्रशासक है अथवा उसके पास केरल क्रिकेट एसोसिएशन की किसी अवैध कार्रवाई को चुनौती देने की अधि स्थिति है यह निश्चय ही बड़े मुद्दे पर प्रेरक प्रभाव रखता है कि बी.सी.सी.आई. तथा उसके राज्य इकाइयों की कार्रवाई भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत भी चुनौती देने के लिए खुली है किसी भी व्यक्ति के द्वारा जो उसकी गतिविधियों से संबंधित है विशेष रूप से पदाधिकारी/प्रशासक जो बी.सी.सी.आई. विनियम में शामिल प्रशासक की परिभाषा के दृष्टिगत भूतपूर्व अध्यक्ष है।

27. इस प्रकार एक बार यह अभिनिर्धारित हो जाए कि वादी/अपीलकर्ता प्रशासक की परिभाषा के दृष्टिगत बी.सी.सी.आई. का प्रशासक भी है तो बी.सी.सी.आई. के विनियम में प्रवेश किए गए संशोधन को चुनौती देने की उसकी योग्यता इस आधार पर अस्वीकार्य नहीं मानी जा सकती कि बी.सी.सी.आई. संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ में 'राज्य' नहीं है क्योंकि दीवानी वाद निश्चय ही दायर किए जा सकते हैं तथा बनाए रखने योग्य माने जा सकते हैं यदि वादी यह मामला बना सके कि वाद दायर करने के लिए कारण कार्रवाई

उत्पन्न हुई है तथा यदि वह कारण कार्रवाई को बनाए रख सके तथा यह भी स्थापित कर सके कि वह वाद का उचित पक्षकार है तो वही न्यायालय द्वारा विचारण किया जाना चाहिए तथा बनाए रखने योग्यता के आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता। वास्तव में जब दीवानी उपचार के लिए दीवानी वाद दायर किया जाता है तो विवादित पक्ष द्वारा यह शर्त संतुष्ट करना कि वह राज्य का उपकरण है उसकी कोई प्रासंगिकता नहीं है क्योंकि दीवानी न्यायालयों को संवैधानिक कार्य निष्पादित नहीं करना है ताकि इस प्रश्न में प्रवेश करें। यदि वे ऐसा करते हैं तो यह अपनी क्षेत्राधिकार की सीमाओं से परे जाना होगा। अतः मेरे मत में यह प्रश्न इस याचिका में उठाए गए विवाद के प्रयोजन के लिए स्पष्ट रूप से अप्रासंगिक है।

28. इस अपील में अब विचारणीय अगला प्रश्न यह है कि क्या उच्च न्यायालय निषेधाज्ञा आवेदन को खारिज करने में उचित था कम से कम इस हद तक कि बी.सी.सी.आई. विनियम के खंड 6.2.4 में प्रवेश किए गए संशोधन को स्थगित रखा जाए विशेष रूप से जब अपीलकर्ता ने प्रथम दृष्ट्या मामला बनाया कि आई.पी.एल. मैचों के लिए आयोजित बोली में उत्तरदाता सं.2 की भागीदारी तथा इस प्रकार चेन्नई सुपर किंग का स्वामित्व बी.सी.सी.आई. के हित से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से टकराव में आया क्योंकि आई.पी.एल. टीम के लिए बोली प्रक्रिया के दौरान तथा उसके बाद उत्तरदाता सं.2 ने निर्विवाद रूप से चार क्षमताओं में पद धारण किए थे जो निम्नानुसार हैं:-

(i) बी.सी.सी.आई. का कोषाध्यक्ष;

(ii) इंडिया सीमेंट्स लि. का उपाध्यक्ष तथा प्रबंध निदेशक;

(ई) चेन्नई सुपर किंग की प्रबंध समिति का अध्यक्ष; तथा

(एफ) आई.पी.एल. की शासी परिषद का पदेन सदस्य।

इसके अतिरिक्त सितंबर 2008 से प्रभावी रूप से उत्तरदाता सं.2 बी.सी.सी.आई. का सचिव हो गया तथा इसलिए बी.सी.सी.आई. का पदेन मुख्य कार्यकारी तथा आई.पी.एल. तथा चैंपियंस लीग सहित बी.सी.सी.आई. की समितियों की बैठकों का संयोजक भी। इस संदर्भ में मुझे

अपीलकर्ता के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता की अभिवचन में सार मिलता है कि हितों का टकराव के लिए किसी वास्तविक आर्थिक लाभ अथवा हानि का वास्तविक प्रमाण आवश्यक नहीं है क्योंकि 'हितों का टकराव' का सिद्धांत बहुत व्यापक समता विधिक तथा नैतिक सिद्धांत है जो भविष्य और/अथवा संभावित स्थिति के उत्पन्न होने को भी रोकने का प्रयास करता है जो मुख्य अभिनेताओं के संलग्न किसी व्यावसायिक रुचि के माध्यम से लाभ अथवा वादा को बाधित करेगी। मैं यह अभिकथन में भी समान रूप से सार पाता हूँ कि 'हितों का टकराव' नियम का संपूर्ण प्रयोजन रोकना है न कि केवल उन स्थितियों का उपचार करना जहां किसी के कर्तव्य के निष्पादन को व्यावसायिक हितों से प्रभावित किया जा सकता है जो ऐसे कर्तव्यों के निष्पक्ष तथा निर्भीक निष्पादन की अनुमति नहीं देते। इस पहलू पर प्रमाणित किया गया है कि उत्तरदाता सं.2 आवश्यक रूप से बोली प्रक्रिया निविदा के डिजाइन खेल के नियमों आई.पी.एल. के संबंध में बी.सी.सी.आई. के भविष्य के योजनाओं आदि के बारे में अत्यंत संवेदनशील सूचनाओं का भागीदार था। अभिकथन किया गया है कि यह कल्पना से परे है कि बी.सी.सी.आई. के किसी प्रमुख पदाधिकारी को ऐसी अंतर्गामी सूचनाएँ जो आवश्यक रूप से प्राप्त होती हैं का उपयोग तथा दुरुपयोग दोनों संभावित तथा वास्तविक सामग्रियों का उत्तरदाता सं.2 द्वारा बोलीकर्ता की क्षमता में उसके कंपनी इंडिया सीमेंट्स लि. के माध्यम से नहीं किया गया हो। इस प्रकार मैं यह प्रस्तुत करना सही पाता हूँ कि कोई कृत्रिम चीनी दीवारें उत्तरदाता सं.2 की बहुविध व्यक्तित्वों तथा गतिविधियों के बीच दोनों निविदा जारीकर्ता तथा बोलीकर्ता के रूप में नहीं मानी जा सकतीं। इसी कारण न्यायालयों ने 'हितों का टकराव' के सिद्धांत को व्यक्ति के न्यासी चरित्र से जोड़ा है जो स्वयं को टकराव की स्थिति में नहीं डालना चाहिए तथा न्यासी के सिद्धांत से जोड़ा है जो सेटुई क्वे ट्रस्ट से निपटता है इस प्रस्तुति के समर्थन में विद्वान अधिवक्ता ने पीयर्स लेस्ली पीटर एंड कंपनी लि. बनाम वायलेट आउच्टरलोनी वापशर एवं अन्य (1969) 3 एस.सी.आर. 203 कंडिका 3 तथा 4 पर भरोसा किया है। इस संदर्भ में इस आधार पर तर्क कि अपीलकर्ता द्वारा पर्याप्त प्रमाण

सहित उद्धृत किया गया 'हितों का टकराव' का कोई स्पष्ट मामला नहीं था खंड 6.2.4 के दृष्टिगत कोई बल नहीं रखता क्योंकि वह स्पष्ट रूप से शामिल करता है कि कोई प्रशासक बी.सी.सी.आई. के आयोजनों में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष व्यावसायिक रुचि नहीं रखेगा तथा इस खंड में संशोधन प्रवेश किया गया जिसमें आई.पी.एल. चैंपियंस लीग तथा ट्वेंटी-20 अंतर्राष्ट्रीय मैचों को उसी से अपवाद बनाया गया। इस प्रकार यद्यपि किसी ने भी अपने किसी कार्य से बी.सी.सी.आई. को वास्तविक हानि उत्पन्न करने में लिप्त नहीं किया हो तथ्य यह रहता है कि कंपनी के अध्यक्ष के रूप में अपनी स्थिति के कारण जो आई.पी.एल. टूर्नामेंट के स्वामित्व के लिए बोली में भाग लिया तथा उसी समय बी.सी.सी.आई. का पदाधिकारी होने के कारण बी.सी.सी.आई. के हितों का टकराव उत्पन्न करने के लिए स्पष्ट रूप से बाध्य है। यह पूरी तरह अलग बात है कि अपीलकर्ता ने उदाहरण के माध्यम से यह भी उदाहरण उद्धृत करने का प्रयास किया है कि चेन्नई सुपर किंग के लिए फ्रेंचाइजी धारक के रूप में उत्तरदाता सं.2 को मैच के रद्द होने के कारण उत्तरदाता सं.2 द्वारा लगभग 47 करोड़ रु. की क्षतिपूर्ति दी गई। तथापि यह आरोप के इस भाग पर भरोसा करने का चरण नहीं है यद्यपि यह उदाहरण के माध्यम से है क्योंकि वाद अभी उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित है किन्तु तथ्य यह रहता है कि द्वितीय उत्तरदाता इंडिया सीमेंट्स लि. के उपाध्यक्ष तथा प्रबंध निदेशक तथा आई.पी.एल. की शासी परिषद के पदेन सदस्य के रूप में अपनी स्थिति के कारण बी.सी.सी.आई. द्वारा आई.पी.एल. मैचों के लिए आयोजित नीलामी में भाग लेने के मार्ग में आया तथा इसी प्रयोजन के लिए संशोधन शीघ्रता से प्रवेश किया गया ताकि उत्तरदाता सं.2 को आई.पी.एल. चेन्नई सुपर किंग के स्वामित्व से अयोग्य नहीं ठहराया जाए।

28. वास्तव में 'हितों के टकराव प्रबंधन' की अवधारणा ने पिछले कई वर्षों में संयुक्त राज्य अमेरिका सहित सभी उन्नत देशों में सरकारों तथा नागरिकों दोनों का ध्यान आकर्षित किया है जैसा कि विश्व के अधिकांश भाग में हुआ है। एक शताब्दी पूर्व *ब्रे बनाम ब्रैडफोर्ड* (1896) ए.सी. 44 के मामले में भी अभिनिर्धारित किया गया था कि निदेशक न्यासी के रूप

में स्वयं को ऐसी स्थिति में नहीं रख सकते जिसमें कंपनी के प्रति कर्तव्यों तथा उनके व्यक्तिगत हितों अथवा अन्यों के प्रति कर्तव्यों के बीच हितों का टकराव हो। न्यायालयों ने न्यासी जैसे निदेशक में निहित विश्वास तथा विश्वास को दुरुपयोग न करने को सुनिश्चित करने के लिए कठोर विधि अपनाई है तथा उपर्युक्त मामले (उपर्युक्त) में लॉर्ड हर्शेल द्वारा मूल सिद्धांत कहा गया था जब अभिनिर्धारित किया गया था कि:-

> "यह समता न्यायालय का अटल नियम है कि न्यासी स्थिति में कोई व्यक्ति... जब तक अन्यथा स्पष्ट रूप से प्रावधान न हो लाभ कमाने का हकदार नहीं है; उसे ऐसी स्थिति में नहीं डालने की अनुमति है जहां उसका हित तथा कर्तव्य टकराएँ। मेरे मत में यह नियम जैसा कहा गया है नैतिकता के सिद्धांत पर आधारित नहीं है। मैं इसे इस विचार पर आधारित मानता हूँ कि मानव स्वभाव जैसा है वैसी परिस्थितियों में न्यासी स्थिति रखने वाले व्यक्ति का हित के बजाय कर्तव्य से प्रभावित होने का खतरा है तथा इस प्रकार उन व्यक्तियों को पूर्वाग्रहित करना जिनकी सुरक्षा के लिए वह बाध्य है। इसलिए इस सकारात्मक नियम को निर्धारित करना समीचीन समझा गया"।

वास्तव में बी.सी.सी.आई. ने स्वयं इस सिद्धांत को सुनिश्चित करने के लिए खंड 6.2.4 को शामिल किया था जिसमें निर्धारित किया गया था कि "कोई प्रशासक बी.सी.सी.आई. के किसी आयोजन में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कोई व्यावसायिक रुचि नहीं रखेगा"। किन्तु उसके बाद बी.सी.सी.आई. ने बिना किसी विचार-विमर्श तथा चर्चा के इस खंड में संशोधन प्रवेश किया तथा ट्वेंटी-20 आई.पी.एल. अथवा चैंपियंस लीग मैचों को इस नियम से अपवाद बनाया जिसके लिए उत्तरदाता कोई विश्वसनीय स्पष्टीकरण नहीं दे सका।

29. इस प्रकार मेरे मत में अपीलकर्ता ने स्पष्ट रूप से प्रबल प्रथम दृष्ट्या मामला बनाया कि संशोधन तिरछे उद्देश्य से उत्तरदाता सं.2 को लाभ पहुँचाने के लिए प्रवेश किया

गया था ताकि उसे नीलामी में भाग लेने तथा चेन्नई सुपर किंग के स्वामित्व से अयोग्य नहीं ठहराया जाए जबकि वह बी.सी.सी.आई. का कोषाध्यक्ष तथा उसके बाद सचिव रहते हुए प्रशासक बना रहा तथा इस प्रकार अपीलकर्ता ने मेरे विचार से अपनी अभिवचन को स्थापित किया कि बी.सी.सी.आई. द्वारा खंड 6.2.4 में प्रवेश किया गया संशोधन बी.सी.सी.आई. द्वारा प्रयोग की गई संशोधन शक्ति का दुरुपयोग था जहाँ तक संशोधन की शक्ति का प्रवेश क्रिकेट खेल को बढ़ावा देने के लिए नहीं बल्कि द्वितीय उत्तरदाता के हित को बढ़ावा देने के लिए किया गया क्योंकि यह स्पष्ट से अधिक स्पष्ट है कि संशोधन के बिना उत्तरदाता सं.2 बोली में भाग लेने का हकदार नहीं होता क्योंकि वह बी.सी.सी.आई. का कोषाध्यक्ष था तथा इसलिए संशोधन के बिना वह बोली में भाग लेने तथा बी.सी.सी.आई. के पदाधिकारी के रूप में कोषाध्यक्ष तथा साथ ही चेन्नई सुपर किंग के स्वामी के दोहरे दर्जे का आनंद लेने के लिए भी योग्य नहीं था।

30. वादी/अपीलकर्ता ने मेरे मत तथा धारणा के अनुसार हितों के टकराव की अवधारणा तथा उसके प्रभाव पर विचार करते हुए निश्चय ही प्रथम दृष्ट्या मामला बनाया कि यह उत्तरदाता सं.2 के व्यावसायिक हित की सेवा करता है जिससे बी.सी.सी.आई. की गतिविधियों के साथ हितों का टकराव उत्पन्न हुआ क्योंकि उत्तरदाता सं.2 प्रशासक/पदाधिकारी के रूप में कोषाध्यक्ष रहते हुए बी.सी.सी.आई. के निर्णय को प्रभावित करने में सक्षम था तथा साथ ही आई.पी.एल. नीलामी में भाग लिया जो स्पष्ट रूप से व्यावसायिक हित उत्पन्न करता है जो यदि संशोधन प्रवेश न किया गया होता तो निषिद्ध होता। पुनरावृत्ति के जोखिम पर भी यह आवश्यक है कि बी.सी.सी.आई. विनियम स्वयं इस स्थिति को स्वीकार करता है जब वह खंड 6.2.4 में निर्धारित करता है कि "कोई प्रशासक बी.सी.सी.आई. के किसी आयोजन में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष व्यावसायिक रुचि नहीं रखेगा" किन्तु उसके प्रभाव को पतला करके आई.पी.एल., चैंपियंस लीग तथा ट्वेंटी-20 मैचों को अपवाद बनाता है जो सबसे लाभकारी तथा राजस्व उत्पन्न करने वाला आयोजन है। यदि

प्रशासक को विनियम के अनुसार बी.सी.सी.आई. के आयोजनों में किसी व्यावसायिक रुचि से स्पष्ट रूप से निषिद्ध किया गया है तो मेरी समझ से परे है कि केवल एक वर्ग के मैच अर्थात् आई.पी.एल., ट्वेंटी-20 तथा चैंपियंस लीग को अपवाद कैसे बनाया जा सकता है तथा पदाधिकारी को बोली में भाग लेने की अनुमति दी जा सकती है किन्तु टेस्ट मैचों सहित अन्य मैचों से रोका जा सकता है। वादी/अपीलकर्ता ने मेरे मत में इस प्रकार पूरी तरह प्रथम दृष्ट्या मामला बनाया कि यह संशोधन मनमानी तथा उत्तरदाता सं.2 के पक्ष में पक्षपातपूर्ण है तथा इसलिए यह निषेधाज्ञा प्रदान करने के लिए उपयुक्त मामला है जिसमें बी.सी.सी.आई. विनियम के खंड 6.2.4 में प्रवेश किए गए अपीलाधीन संशोधन को निलंबित अथवा स्थगित रखा जाए।

31. तथापि चूँकि उत्तरदाता सं.2 पहले ही बोली में भाग ले चुका है तथा सफल हुआ है तथा चेन्नई सुपर किंग का स्वामी है इसलिए उसे यह विकल्प खुला छोड़ा जाना उचित है कि वह बी.सी.सी.आई. का पदाधिकारी बने रहना चाहता है अथवा आई.पी.एल. चेन्नई सुपर किंग का स्वामित्व रखना चाहता है क्योंकि विनियम 6.2.4 के दृष्टिगत संशोधन से रहित होने पर वह आई.पी.एल. नीलामी में भाग लेने के लिए भी योग्य नहीं था क्योंकि वह पदाधिकारी/प्रशासक के रूप में बी.सी.सी.आई. के आयोजनों में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष व्यावसायिक हित उत्पन्न करता था। मेरे विचार से वादी/अपीलकर्ता ने अपनी बात को इस हद तक सफल बनाया कि संशोधन को निलंबित रखने के लिए उपयुक्त है तथा कम से कम वाद के अंतिम निर्णय तक संशोधन के विरुद्ध निषेधाज्ञा प्रदान की जाए। नीचे के न्यायालयों ने निषेधाज्ञा आवेदन पर विचार करते हुए परिस्थिति अथवा स्थिति के अनुसार उपचार को ढालने में पूर्ण सक्षम थे किन्तु वे इसमें बुरी तरह असफल रहे। किन्तु बोली का घटनाक्रम संशोधन बी.सी.सी.आई. विनियम में प्रवेश किए जाने से पहले ही घटित हो चुका था तथा संशोधन निलंबित किए जाने योग्य था अतः मेरे मत में उत्तरदाता सं.2 को यह विकल्प प्रयोग करना होगा कि वह आई.पी.एल. का स्वामित्व रखना तथा चेन्नई सुपर किंग का

संचालन करना चाहता है अथवा बी.सी.सी.आई. के मामलों का प्रबंधन प्रशासक के रूप में निष्पक्षता, सत्यनिष्ठा तथा सदाचार के साथ करना अधिक रुचिकर है जिसमें वह अपनी व्यावसायिक रुचि से अलग हो जाए जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से बी.सी.सी.आई. की गतिविधियों के साथ हितों का टकराव उत्पन्न करती है तथा विनियम 6.2.4 के अंतर्गत स्पष्ट रूप से निषिद्ध थी किन्तु आई.पी.एल. नीलामी के बाद संशोधन प्रवेश करके पतला कर दी गई जब उत्तरदाता सं.2 बोली में भाग लेने के लिए अयोग्य था। अतः दिनांक 27.9.2008 का अपीलाधीन संशोधन उसी के विरुद्ध निषेधाज्ञा प्रदान करके निलंबित किए जाने के लिए उपयुक्त था। यह स्पष्ट रूप से ऐसा है क्योंकि यह अनदेखा करना कठिन होगा कि बहुविध निष्ठाएँ बी.सी.सी.आई. की गतिविधियों के साथ व्यावसायिक हित उत्पन्न कर सकती हैं तथा इस प्रकार हितों का टकराव उत्पन्न कर सकती हैं क्योंकि बोर्ड का वित्तीय अथवा व्यक्तिगत हित बोर्ड के प्रशासक के व्यावसायिक तथा व्यक्तिगत हित से स्पष्ट रूप से असंगत होगा। इसके अतिरिक्त समता तथा निष्पक्षता का नियम प्रदान करता है कि कोई व्यक्ति जो दूसरे के प्रति न्यास की स्थिति में है वह उस स्थिति से प्रभावित मामलों में अपना हित आगे नहीं बढ़ा सकता उदाहरण के लिए उस दूसरे के खर्च पर व्यापार करके तथा लाभ कमाकर क्योंकि विधिक विवेक का नियम अनिवार्य करता है कि एक बार न्यासी को अपने निष्ठा के कर्तव्य के उल्लंघन में दिखाया जाए तो उसे किसी भी लाभ को त्यागना होगा यद्यपि वह ईमानदारी से तथा अपने मूल के सर्वोत्तम हित में कार्य करता हो। वर्तमान मामले में जब बी.सी.सी.आई. ने आई.पी.एल. टीम के स्वामित्व के लिए नीलामी आयोजित की तथा प्रशासक – उत्तरदाता सं.2 ने बोली में भाग लिया तो वास्तविक तथा/अथवा कथित हितों के टकराव की विभिन्नता को बाहर नहीं किया जा सकता। इसमें अंतर्गामी सूचना तक पहुँच, नीलामी आयोजित करने वाले निर्णयकर्ताओं पर संभावित अनुचित प्रभाव आदि शामिल हैं।

32. अतः मैं इन अपीलों को स्वीकार करने तथा बी.सी.सी.आई. विनियम 6.2.4 में दिनांक 27.9.2008 को प्रवेश किए गए अपीलाधीन संशोधन के संचालन को निलंबित करने

का निर्देश देकर निषेधाज्ञा प्रदान करना उचित समझता हूँ। यदि उत्तरदाता सं.2 – श्री एन. श्रीनिवासन आई.पी.एल. चेन्नई सुपर किंग के स्वामित्व तथा संचालन को जारी रखने का विकल्प चुनता है तो वह ऐसा करने के लिए स्वतंत्र होगा किन्तु ऐसी स्थिति में उसे ऊपर दिए गए कारणों के दृष्टिगत बी.सी.सी.आई. में किसी भी क्षमता में कोई पद धारण करने से रोका जाएगा।

आदेश

चूँकि मतभेद है अतः इन मामलों के कागजात भारत के माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष रखे जाएँ ताकि उचित पीठ को सौंपे जाएँ।

डी.जी. मामला बड़े पीठ को निर्देशित।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता। समस्त व्यावहारिक, कार्यालयीय, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।